'मेरा जीवन ही मेरा संदेश'

गांधीजीका जीवन उन्हींके शब्दोंमें

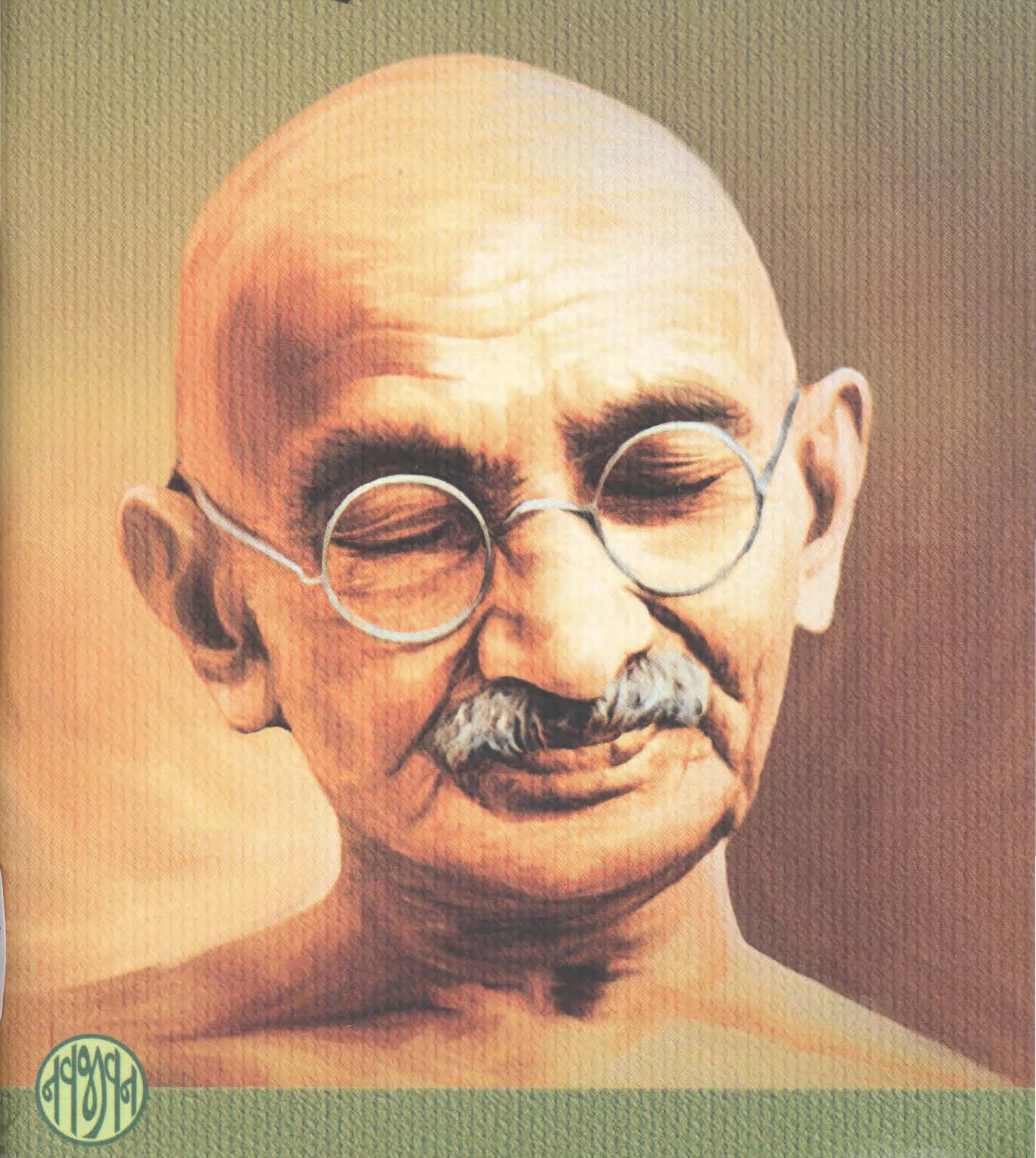

नवजीवन

‘मेरा जीवन ही मेरा संदेश’

गांधीजीका जीवन उन्हींके शब्दोंमें

संग्राहक और संपादक

कृष्ण कृपालानी

पहली आवृत्ति, मई १९८३

ISBN 978-8-7229-117-4

मुद्रक और प्रकाशक

विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन मुद्रणालय,

अहमदाबाद – ३८० ०१४

Phone 079-27540635, 27542634 | Email : sales@navajivantrust.org

Website: www.navajivantrust.org

प्रकाशकका निवेदन

युनेस्को (युनाइटेड नेशन्स एज्युकेशनल साइंटिफिक एण्ड कल्चरल ऑर्गेनिज़ेशन) ने विश्वकी आजकी विषम स्थितिमें गांधीजीके जीवन और उनके कार्य तथा संदेशका लोगोंको परिचय करानेकी दृष्टिसे 'ऑल मैन आर ब्रदर्स' नामक एक अंग्रेजी संग्रह प्रकाशित किया है, जिसमें उनकी आत्मकथाका मुख्य भाग तथा अन्य लेखोंसे महत्तपूर्ण विचारोंके उद्धरणोंका समावेश किया गया है। इस संग्रहकी रचना इस प्रकार की गई है कि जो वाचक गांधीजीके विशाल साहित्यको न पढ़ सके उसे इस संग्रहके द्वारा उनके कार्य, उनकी कार्यपद्धति तथा उनके विचारोंका परिचय हो सके। यह संग्रह फ्रेंच तथा स्पेनिश भाषामें भी प्रकाशित किया गया है।

नवजीवन इस अंग्रेजी संग्रहकी भारतीय आवृत्ति तथा हिन्दी और गुजरातीमें अनुवाद प्रकाशित किये हैं। इन तीनों भाषाओंके संस्करणोंका जनताकी ओरसे अच्छा स्वागत हुआ है और अबतक इनकी तीन-तीन आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

यह छोटी-सी पुस्तक 'गांधीजीका जीवन – उन्होंके शब्दोंमें' युनेस्को द्वारा प्रकाशित 'ऑल मैन आर ब्रदर्स' का पहला प्रकरण है। इसमें गांधीजीके जन्मसे लेकर सन् १९४८ की ३० तारीख़को उनका अवसान हुआ उसके बीस घंटेसे भी कम समय तकका जीवन और विचार समा लिये गये हैं। इस अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु फिर भी संम्पूर्ण और सर्वांगीण संग्रहका संपादन श्री कृष्ण कृपालानीने किया है, जो फिलहाल नेशनल बुक ट्रस्टके अध्यक्ष हैं। उन्होंने इस लघु संग्रहको प्रकाशित करनेकी हमें अपनी अनुमति दी हैं; इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

आम जनतामें और ख़ास करके तरुण पीढ़ीमें गांधीजीके विषयमें अधिक जानने-समझनेकी जो जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, उसे संतुष्ट करनेकी दृष्टिसे 'गांधीजीका जीवन - उन्हींके शब्दोंमें' नामक यह छोटी-सी पुस्तक मात्र लागत क़ीमत पर जनताको सुलभ की जा रही है। आशा है हिन्दी भाषा-भाषी इसका अच्छा स्वागत करेंगे। साथ ही इसके अंग्रेजी और गुजराती संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं।

संदर्भ – सूत्र

आत्म. – सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा, गांधीजी, प्रकाशक : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४। इस पुस्तकके संदर्भके लिए उपयोगमें ली गई आवृत्ति १९६१।

यं. इं. – यंग इंडिया, गांधीजीके संपादनमें अहमदाबादसे निकलनेवाला अंग्रेजी साप्ताहिक (१९१९-१९३२)

हिं. न. – हिन्दी नवजीवन, हिन्दी साप्ताहिक (१९२१-१९३२), संपादक : गांधीजी।

ह. से. – हरिजनसेवक, हिन्दी साप्ताहिक (१९३३-१९५६), संस्थापक : महात्मा गांधी।

क. व. म. गां. – कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, प्रकाशक : दि पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फरमेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिलली। इस पुस्तकके संदर्भके लिए उपयोगमें लिया गया खंड-१, १९५८।

सिलेक्शन्स. – सिलेक्शन्स फ्रॉम गांधी (१९४८), निर्मलकुमार बोस, प्रकाशक: नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४।

मो. क. गां. – महात्मा, लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड १ से ८, डी. जी. तेन्दुलकर, प्रकाशक : विट्ठलभाई के. झवेरी और डी. जी. तेन्दुलकर, बम्बई-६। इस पुस्तकके संदर्भके लिए उपयोगमें ली गई आवृत्ति खंड-१, २, १९५१; खंड-३, ४, ५, १९५२; खंड-६, ७, १९५३; खंड-८, १९५४।

ला. फे. – महात्मा गांधी, दि लास्ट फेज़, खंड-१ और २, प्यारेलाल, प्रकाशक: नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४। इस पुस्तकके संदर्भके लिए उपयोगमें ली गई आवृत्ति खंड-१, १९५६ और खंड-२, १९५८।

मा. म. गां. – दि माइन्ड ऑफ महात्मा गांधी, आर. के. प्रभु और यू. आर. राव, प्रकाशक : ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन। इस पुस्तकके संदर्भके लिए उपयोगमें ली गई आवृत्ति १९४५।

गांधीजीका जीवन - उन्हींके शब्दोंमें

१. मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है? मुझे तो आत्मकथाके बहाने सत्यके जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं, उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओतप्रोत होनेके कारण यह कथा एक जीवन-वृत्तांत जैसी बन जायेगी। लेकिन अगर उसके हर पन्ने पर मेरे प्रयोग ही प्रकट हों, तो मैं स्वयं उस कथाको निर्दोष मानूंगा।

आत्म.(प्रस्ता.) ६

२. राजनीतिके क्षेत्रमें हुए मेरे प्रयोगोंको अब सारा हिन्दुस्तान जानता है; यही नहीं, बल्कि थोड़ी-बहुत मात्रामें सभ्य कही जानेवाली दुनिया भी उन्हें जानती है। मेरे इन प्रयोगोंकी क़ीमत कम-से-कम है, और इसलिए इन प्रयोगों द्वारा मुझे 'महात्मा' का जो पद मिला है उसकी क़ीमत भी थोड़ी ही है। कई बार तो इस विशेषणने मुझे बहुत अधिक दुःख भी दिया है। मुझे ऐसा एक भी क्षण याद नहीं है, जब इस विशेषणके कारण मैं फूल गया होऊं। लेकिन अपने आध्यात्मिक प्रयोगोंका, जिन्हें मैं ही जान सकता हूँ और जिनके कारण राजनीतिक क्षेत्रकी मेरी शक्ति भी जन्मी है, वर्णन करना मुझे अवश्य ही अच्छा लगेगा। अगर ये प्रयोग सचमुच आध्यात्मिक हैं, तो इनमें गर्व करनेकी गुंजाइश ही नहीं है। इनसे तो केवल नम्रताकी ही वृद्धि होगी। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता जाता हूँ, त्यों-त्यों अपनी अल्पताको मैं स्पष्ट देख सकता हूँ।

आत्म. (प्रस्ता.) ६

३. मुझे जो करना है, तीस वर्षोंसे मैं जिसकी आतुरतासे रट लगाये हुए हूँ, वह तो आत्म-दर्शन है, ईश्वरका साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरे सारे काम इसी दृष्टिसे होते हैं। मेरा सब लेखन भी इसी दृष्टिसे होता है, और राजनीतिके क्षेत्रमें मेरा पड़ना भी इसी ध्येयके अधीन है। लेकिन ठेठसे ही मेरा यह मत रहा है कि जो एकके लिए शक्य है, वह सबके लिए भी शक्य है। इस कारण मेरे प्रयोग निजी नहीं हुए, नहीं रहे। सब उन्हें देख सकें तो मुझे नहीं लगता कि इससे उन प्रयोगोंकी आध्यात्मिकता कम होगी। अवश्य ही कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं, जिन्हें आत्मा ही जानती है, जो आत्मामें ही समा जाती

हैं। परंतु ऐसी वस्तु देना मेरी शक्तिसे परेकी बात है। मेरे प्रयोगोंमें आध्यात्मिकका अर्थ है नैतिक; धर्मका अर्थ है नीति। आत्माकी दृष्टिसे पाली गयी नीति ही धर्म है।

आत्म. (प्रस्ता.) ६-७

४. इन प्रयोगोंके बारेमें मैं किसी भी प्रकारकी संपूर्णताका दावा नहीं करता। वैज्ञानिक अपने प्रयोग अतिशय नियमपूर्वक, विचारपूर्वक और बारीकीसे करता है। फिर भी उनसे उत्पन्न परिणामोंको वह अन्तिम नहीं कहता, अथवा वे परिणाम सच्चे ही हैं इस बारेमें वह साशंक नहीं तो तटस्थ अवश्य रहता है। अपने प्रयोगों के बारेमें मेरा भी वैसा ही दावा है। मैंने खूब आत्मनिरीक्षण किया है, एक-एक भाव की जाँच की है, उसका पृथक्करण किया है। किन्तु उसमें से निकले हुए परिणाम सबके लिए अन्तिम ही हैं, वे सच्चे हैं अथवा वे ही सच्चे हैं, ऐसा दावा मैं कभी नहीं करना चाहता। हाँ, यह दावा मैं अवश्य करता हूँ कि मेरी दृष्टिसे ये सच्चे हैं, और इस समय तो अंतिम जैसे ही मालूम होते हैं। अगर ऐसे न मालूम होते हों, तो मुझे उनके सहारे कोई भी कार्य खड़ा नहीं करना चाहिये | लेकिन मैं तो पग-पग पर जिन वस्तुओंको देखता हूँ, उनके त्याज्य और ग्राह्य ऐसे दो भाग कर लेता हूँ, और जिन्हें ग्राह्य समझता हूँ उनके अनुसार अपना आचरण बना लेता हूँ।

आत्म. (प्रस्ता.) ७

५. मेरा जीवन संपूर्ण, अखंड और अविभाज्य है। और मेरे सब कार्य एक-दूसरेमें ओतप्रोत हैं। उन सबका जन्म संपूर्ण मानव जातिके प्रति रहे मेरे कभी न तृप्त होनेवाले प्रेमसे होता है।

सिलेक्शन्स. ४५

६. गांधी-कुटुम्ब पहले तो पंसारीका धंधा करनेवाला था। लेकिन मेरे दादासे लेकर पिछली तीन पीढ़ियोंसे वह काठियावाड़के राज्योंमें दीवानगीरी करता रहा है।...मालूम होता है कि उत्तमचंद गांधी अथवा ओता गांधी टेकवाले आदमी थे। राजनीतिक खटपटके कारण उन्हें पोरबंदर छोड़ना पड़ा था और उन्होंने जूनागढ़ राज्यमें आश्रय लिया था। वहां उन्होंने नवाब साहबको बायें हाथसे सलाम किया। किसीने इस प्रकट अविनयका कारण पूछा, तो जवाब मिला "दाहिना हाथ तो पोरबंदरको अर्पित हो चुका है।"

आत्म. १

७. मेरे पिता कुटुम्ब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार किन्तु क्रोधी थे। वे थोड़े विषयासक्त भी रहे होंगे। उनका आखिरी (चौथा) ब्याह चालीस सालके बाद हुआ था। हमारे परिवारमें और बाहर भी उनके विषयमें यह धारणा थी कि वे रिश्वतखोरीसे दूर भागते हैं, और इस कारण शुद्ध न्याय करते हैं।

आत्म. १

८. मेरे मन पर यह छाप बनी हुई है कि मेरी माता साध्वी स्त्री थीं। वे बहुत श्रद्धालु थीं। बिना पूजा-पाठके कभी भोजन न करती थीं। हमेशा हवेली (वैष्णव मंदिर) जाती थीं ।...वे कठिन-से-कठिन व्रत शुरू करतीं और उन्हें निर्विघ्न पूरा करतीं। लिये हुए व्रतोंको बीमार होने पर भी वे कभी न छोड़ती थीं।

आत्म. २

९. इन माता-पिताके घर पोरबन्दंरमें मेरा जन्म हुआ। ...बचपन मेरा पोरबन्दरमें ही बीता। याद पड़ता है कि मुझे किसी शालामें भरती किया गया था। वहां मैं मुश्किलसे थोड़े पहाड़े सीखा था। मुझे सिर्फ इतना याद है कि मैं उस समय दूसरे लड़कोंके साथ अपने शिक्षकको गाली देना सीखा था। और कुछ याद नहीं पड़ता। इस परसे मैं अंदाज लगाता हूँ कि मेरी बुद्धि मंद और स्मरण-शक्ति कच्ची रही होगी।

आत्म. २-३

१०. मैं बहुत ही शरमीला लड़का था। शालामें अपने कामसे ही काम रखता था। घंटी बजनेके समय पहुंचता था और शालाके बन्द होते ही घर भाग जाता था। 'भागना' शब्द मैं जान-बूझकर लिख रहा हूँ, क्योंकि किसीसे बातें करना मुझे अच्छा नहीं लगता था। साथ ही यह डर भी रहता था कि कहीं कोई मेरा मज़ाक़ न उड़ाये।

आत्म. ३

११. हाईस्कूलके पहले ही वर्षकी परीक्षाके समयकी एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा-विभागके इन्स्पेक्टर जाइल्स विद्यालयका निरीक्षण करने आये थे। उन्होंने पहली कक्षाके विद्यार्थियोंको अंग्रेजीके पांच शब्द लिखाये | उनमें एक शब्द 'केटल' (Kettle) था। मैंने उसके हिज्जे गलत लिखे थे। शिक्षकने अपने बूटकी नोक मारकर मुझे सावधान किया। लेकिन मैं क्यों सावधान होने लगा? मुझे तो यह ख़याल ही नहीं हो सका कि शिक्षक पासवाले लड़केकी पट्टी देखकर हिज्जे सुधार लेनेको कहते हैं। मैंने यह माना था कि शिक्षक तो यह देख रहे हैं कि हम एक-दूसरेकी पट्टी देखकर चोरी न करें। सब लड़कोंके पांचों शब्द सही निकले; अकेला मैं ही बेवकूफ ठहरा! शिक्षकने मुझे अपनी बेवकूफी बादमें समझायी; लेकिन मेरे मन पर उनके समझानेका कोई असर न हुआ। मैं दूसरे लड़कोंकी पट्टीमें देखकर चोरी करना कभी सीख ही नहीं सका।

आत्म. ३-४

१२. यह बात लिखते हुए मन दुःखी होता है कि तेरह सालकी उमरमें मेरा विवाह हुआ था। आज मेरी आंखोंके सामने बारह-तेरह वर्षके बालक मौजूद हैं। जब उन्हें देखता हूँ और अपने विवाहका स्मरण करता हूँ, तो मुझे अपने ऊपर दया आती है, और इन बालकोंको मेरी स्थितिसे बच जानेके लिए बधाई देनेकी इच्छा होती है। तेरहवें वर्षमें विवाहके समर्थनमें मुझे एक भी नैतिक दलील सूझ नहीं सकती।

आत्म. ५

१३. उस समय मेरे मनमें अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने, बाजे बजने, वर-यात्राके समय घोड़े पर चढ़ने, बढ़िया भोजन पाने, एक नई बालिकाके साथ आनंद करने आदिकी अभिलाषाके सिवा दूसरी कोई खास बात रही हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है।

आत्म. ६

१४. और वह पहली रात! दो निर्दोष बालक अज्ञात संसार-सागर में कूद पड़े। भाभीने सिखलाया कि मुझे पहली रातमें कैसा बरताव करना चाहिये। धर्मपत्नीको किसने सिखलाया, यह पूछनेकी बात मुझे याद नहीं। अब भी पूछा जा सकता है, परन्तु पूछनेकी मेरी इच्छा तक नहीं होती |

पाठक यह जान लें कि हम दोनों एक-दूसरेसे डरते थे। एक-दूसरेसे शरमाते तो थे ही। बातें कैसे करना, क्या करना, सो भला मैं क्या जानूं? मिली हुई सिखावन भी इसमें क्या मदद करती? लेकिन कया इस संबंधमें कुछ सिखना ज़रूरी होता है? जहां संस्कार बलवान है वहां सारी सिखावन ग़ैर-ज़रूरी बन जाती है।...धीरे-धीरे हम एक-दूसरेको पहचानने लगे, आपसमें बोलने लगे। हम दोनों समान उमरके थे। पर मैंने तो जल्दी ही पतिकी सत्ता चलाना शुरू कर दिया।

आत्म. ६-७

१५. मुझे कहना चाहिये कि मैं अपनी स्त्रीके प्रति विषयासक्त था। शालामें भी मुझे उसके विचार आते रहते थे। कब रात पड़े और कब हम मिलें, यह विचार बना ही रहता था। वियोग असह्य था। अपनी कुछ निकम्मी बकवासोंसे मैं कस्तूरबाईको जगाये रखता था। मेरा ख़याल है कि यदि इस आसक्तिके साथ ही मुझमें कर्तव्य-परायणता न होती, तो मैं व्याधिग्रस्त होकर मौतके मुंहमें चला जाता, अथवा इस संसारमें बोझरूप बनकर जिन्दा रहता। 'सवेरा होते ही नित्यकर्ममें तो मुझे लग ही जाना चाहिये, किसीको धोखा तो दिया ही नहीं जा सकता' - अपने इन विचारोंके कारण मैं बहुतसे संकटोंसे बच गया हूँ।

आत्म. ९

१६. मेरा अपना ख़याल है कि मुझे अपनी होशियारीका कोई गर्व नहीं था। पुरस्कार या छात्रवृत्ति मिलने पर मुझे आश्चर्य होता था। पर अपने आचरणके विषयमें मैं बहुत सजग था। आचरणमें थोड़ा भी दोष आने पर मुझे रुलाई आ ही जाती थी। मेरे हाथों कोई भी ऐसा काम बनता, जिससे शिक्षकोंको मुझे डांटना पड़ता अथवा शिक्षकोंका वैसा ख़याल बनता, तो वह मेरे लिए असह्य हो जाता था। मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पड़ी थी। मुझे मारका दुःख नहीं था, पर मैं दण्डका पात्र माना गया इसका मुझे बड़ा दुःख रहा। मैं खूब रोया।

आत्म. ११

१७. हाईस्कूलमें मेरे थोड़े ही विश्वासपात्र मित्र थे। कहा जा सकता है कि ऐसी मित्रता रखनेवाले दो मित्र अलग-अलग समयमें रहे। दूसरी मित्रता...मेरे जीवनका एक दुःखद प्रकरण है। यह मित्रता बहुत वर्षों तक रही। इस मित्रताको निभानेमें मेरी दृष्टि सुधारककी थी।

आत्म. १४

१८. बादमें मैं देख सका कि मेरा अनुमान ठीक नहीं था। सुधार करनेके लिए भी मनुष्यको गहरे पानीमें नहीं पैठना चाहिये। जिसे सुधारना है उसके साथ मित्रता नहीं हो सकती। मित्रतामें अद्वैत भाव होता है। संसारमें ऐसी मित्रता क्वचित् ही पायी जाती है। मित्रता समान गुणवालोंके बीच ही शोभती है और निभती है। मित्र एक-दूसरेको प्रभावित किये बिना रह ही नहीं सकते । अतएव मित्रतामें सुधारके लिए बहुत कम अवकाश रहता है। मेरी राय है कि घनिष्ठ मित्रता अनिष्ट है, क्योंकि मनुष्य गुणोंकी अपेक्षा दोषोंको जल्दी ग्रहण करता है। गुण ग्रहण करनेके लिए प्रयासकी आवश्यकता है। जो आत्माकी, ईश्वरकी मित्रता चाहता है, उसे एकाकी रहना चाहिये, अथवा समूचे संसारके साथ मित्रता रखनी चाहिये। ऊपरका विचार योग्य हो अथवा अयोग्य, घनिष्ठ मित्रता बढ़ानेका मेरा प्रयोग निष्फल रहा।

आत्म. १५

१९. इन मित्रके पराक्रम मुझे मुग्ध कर देते थे। वे मनचाहा दौड़ सकते थे। उनकी गति बहुत अच्छी थी। वे खूब लम्बा और ऊंचा कूद सकते थे। मार सहन करनेकी शक्ति भी उनमें खूब थी। अपनी इस शक्तिका प्रदर्शन भी वे मेरे सामने समय-समय पर करते थे। जो शक्ति अपनेमें नहीं होती उसे दूसरेमें देखकर मनुष्यको आश्चर्य होता ही है। वैसा मुझे भी हुआ। आश्चर्यमें से मोह पैदा हुआ। मुझमें दौड़ने-कूदनेकी शक्ति नहींके बराबर थी। मैं सोचा करता कि मैं भी इन मित्रकी तरह बलवान बन जाऊं तो कितना अच्छा हो !

आत्म. १६

२०. मैं बहुत डरपोक था। चोर, भूत, सांप आदिके डरसे घिरा रहता था। ये डर मुझे खूब हैरान भी करते थे। रात कहीं अकेले जानेकी हिम्मत नहीं होती थी | अंधेरेमें तो मैं कहीं जाता ही न था।

दीयेके बिना सोना लगभग असंभव था। कहीं इधरसे भूत न आ जाये, उधरसे चोर न आ जाये और तीसरी जगहसे सांप न निकल आये! इसलिए दीयेकी ज़रूरत तो रहती ही थी।

आत्म. १६

२१. मेरे ये मित्र मेरी इन कमजोरियोंको जानते थे। वे मुझसे कहा करते थे कि वे तो जिन्दा साँपोंको भी हाथसे पकड़ लेते हैं, चोरसे कभी नहीं डरते, भूतको तो मानते ही नहीं । उन्होंने मेरे मनमें यह ठसा दिया कि यह सारा प्रताप मांसाहारका है।

आत्म. १६

२२. इन सब बातोंका मेरे मन पर पूरा-पूरा असर हुआ |...मैं यह मानने लगा कि मांसाहार अच्छी चीज है। उससे मैं बलवान और साहसी बनूंगा। अगर समूचा देश मांसाहार करे, तो अंग्रेजोंको हराया जा सकता है।

आत्म. १६

२३. जब-जब ऐसा भोजन मिलता तब-तब घर पर तो भोजन किया ही नहीं जा सकता था। जब माताजी भोजनके लिए बुलातीं, तब मुझे 'आज भूख नहीं है, खाना हजम नहीं हुआ है' ऐसे बहाने बनाने पड़ते थे। ऐसा कहते समय हर बार मुझे भारी आघात पहुंचता था। इतना झूठ, और वह भी मांके सामने ! और अगर माता-पिताको पता चले कि लड़के मांसाहारी हो गये हैं, तब तो उन पर बिजली ही टूट पड़ेगी। ये विचार मेरे दिलको कुरदते रहते थे।

इसलिए मैंने निश्चय किया: 'मांस खाना आवश्यक है; उसका प्रचार करके हिन्दुस्तानको सुधारेंगे; पर माता-पिताकों धोखा देना और झूठ बोलना तो मांस न खानेसे भी बुरा है। इसलिए माता-पिताके जीते-जी तो मुझे मांस नहीं खाना चाहिये। उनकी मृत्युके बाद, स्वतंत्र होने पर, खुले तौरसे मांस खाना चाहिये और जब तक वह समय न आये तब तक मुझे मांसाहारका त्याग करना चाहिये।'

अपना यह निश्चय मैंने मित्रको बता दिया, और तबसे मांसाहार जो छूटा सो सदाके लिए छूट गया।

आत्म. १८

२४. एक बार मेरे ये मित्र मुझे वेश्याओंकी बस्तीमें ले गये। वहां मुझे योग्य सूचनायें देकर एक स्त्रीके मकानमें भेजा। मुझे उसे पैसे वगैरा कुछ देना नहीं था। हिसाब हो चुका था। मैं घरमें घुस तो या, पर जिसे ईश्वर बचाना चाहता है वह गिरनेकी इच्छा रखते हुए भी पवित्र रह सकता है। उस कोठरीमें मैं तो बिलकुल अंधा बन गया | मुझे बोलनेका भी होश न रहा। मारे शरमके सन्नाटेमें आकर मैं उस औरतके पास खटिया पर तो बैठा, पर मुंहसे बोल न निकल सका। औरतने गुस्सेमें आकर मुझे दो-चार खरी-खोटी सुनायी और दरवाज़ेकी राह दिखायी ।

उस समय तो मुझे जान पड़ा कि मेरी मर्दानगीको बट्टा लगा, और मैंने चाहा कि धरती जगह दे तो मैं उसमें समा जाऊँ। पर इस तरह बचनेके लिए मैंने सदा ही भगवानका आभार माना है। मेरे जीवनमें ऐसे ही दूसरे चार प्रसंग और आये। कहना होगा कि उनमेंसे अनेकोंमें, अपने प्रयत्नके बिना केवल परिस्थितिके कारण मैं बचा हूँ। विशुद्ध दृष्टिसे तो इन प्रसंगोंमें मेरा पतन ही माना जायेगा। मैंने विषयकी इच्छा की इसलिए मैं उसे भोग ही चुका । फिर भी लौकिक दृष्टिसे इच्छा करने पर भी जो प्रत्यक्ष कर्मसे बचता है, उसे हम बचा हुआ मानते हैं, और इन प्रसंगोंमें मैं इसी तरह, इतनी ही हद तक, बचा हुआ माना जाऊँगा।

आत्म. १८-१९

२५. जिस तरह हम यह अनुभव करते हैं कि पतनसे बचनेका प्रयत्न करते हुए भी मनुष्य पतित बनता है, उसी तरह यह भी एक अनुभव-सिद्ध बात है कि गिरना चाहते हुए भी अनेक संयोगोंके कारण मनुष्य गिरनेसे बच जाता है। इसमें पुरुषार्थ कहां है, दैव कहां है, अथवा किन नियमोंके वश होकर मनुष्य आखिर गिरता या बचता है, ये सारे गूढ़ प्रश्न हैं। इनका हल आज तक नहीं हुआ, और कहना कठिन है कि अन्तिम निर्णय कभी हो सकेगा या नहीं।

आत्म. १९

२६. हम दम्पतीके बीच जो कुछ मतभेद पैदा होता या कलह होता, उसका एक कारण यह मित्रता भी थी। मैं ऊपर बता चुका हूँ कि मैं जैसा प्रेमी पति था वैसा वहमी पति भी था। पत्नीके बारेमें

मेरे वहमको बढ़ानेवाली यह मित्रता थी, क्योंकि मित्रकी सच्चाईके बारेमें मुझे कोई सन्देह था ही नहीं। इन मित्रकी बातोंमें आकर मैंने अपनी धर्मपत्नीको कितने ही कष्ट पहुंचाये हैं। इस हिंसाके लिए मैंने अपनेको कभी माफ नहीं किया है। ऐसे दुःख केवल हिन्दू स्त्री ही सहन कर सकती है और इस कारण मैंने स्त्रीको सदा सहनशीलताकी मूर्तिके रूपमें देखा है।

आत्म. १९-२०

२७. इस सन्देहकी जड़ तो तभी कटी, जब मुझे अहिंसाका सूक्ष्म ज्ञान हुआ; यानी जब मैंने ब्रह्मचर्यकी महिमाको समझा और यह समझा कि पत्नी पतिकी दासी नहीं, पर उसकी सहचारिणी है, सहधर्मिणी है, दोनों एक-दूसरेके सुख-दुःखके समान साझेदार हैं और भला-बुरा करनेकी जितनी स्वतंत्रता पतिको है उतनी ही पत्नीको भी है। सन्देहके उस कालको जब मैं याद करता हूँ तो मुझे अपनी मूर्खता और विषयान्ध निर्दयता पर क्रोध आता है और मित्रता-विषयक अपनी मूर्च्छा पर दया आती है।

आत्म. २०

२८. छह या सात सालसे लेकर सोलह सालकी उमर तक मैंने स्कूलमें पढ़ाई की, पर स्कूलमें कहीं भी धर्मकी शिक्षा नहीं मिली। यों कह सकते हैं कि शिक्षकोंसे जो आसानीसे मिलना चाहिये था वह मुझे नहीं मिला। फिर भी वातावरणसे कुछ-न-कुछ तो मिलता ही रहा। यहां धर्मका उदार अर्थ करना चाहिये। धर्म अर्थात् आत्मबोध, आत्मज्ञान।

आत्म. २५

२९. पर एक चीजने मनमें गहरी जड़ जमा ली – यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीतिमात्रका समावेश सत्यमें है। सत्यको तो खोजना ही होगा । दिन-पर-दिन सत्यकी महिमा मेरे निकट बढ़ती गयी। सत्यकी व्याख्या विस्तृत होती गयी, और आज भी हो रही है।

आत्म. २८

३०. अस्पृश्यताको मैं हिन्दू धर्मका सबसे बड़ा कलंक मानता हूँ। इस विचारकी प्रतीति मुझे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके दौरान प्राप्त हुए कड़वे अनुभवों द्वारा नहीं हुई थी। इसका कारण यह भी नहीं है कि एक समय मैं नास्तिक था। यह मानना भी – जैसा कि कुछ लोग मानते हैं – उतना ही गलत है कि ये विचार मैंने ईसाई धार्मिक साहित्यके अपने अध्ययनसे ग्रहण किये हैं। मेरे ये विचार उस समय भी थे, जब मैं न तो बाइबल या उसके अनुयायियोंके प्रति आकर्षित हुआ था और न उनके परिचयमें आया था।

यह विचार पहले-पहल जब मेरे मनमें उठा तब मैं मुश्किलसे १२ वर्षका रहा हूँगा। उस समय उका नामक एक भंगी – 'अछूत' टट्टियां साफ करनेके लिए हमारे घर आया करता था। तब मैं अक्सर अपनी मांसे पूछा करता था कि उसे छूना बुरा क्यों है, मुझे उसे छूनेसे क्यों रोका जाता है। कभी मैं अचानक उकाको छू लेता, तो मुझे स्नान करनेके लिए कहा जाता था। यद्यपि मैं स्वभावसे ही इस आदेशका पालन करता था, लेकिन मैं मुस्कराते हुए अपना यह विरोध प्रकट किये बिना नहीं रहता था कि हिन्दू धर्मने अस्पृश्यताको स्वीकृति नहीं दी है; यह सर्वथा असंभव है। मैं अपने माता-पिताका बड़ा कर्तव्य-परायण और आज्ञाकारी बालक था, लेकिन उनके सम्मानकी रक्षा करते हुए इस विषयमें मेरा उनके साथ प्राय: झगड़ा हो जाता था। मैंने अपनी मांसे कह दिया था कि तुम्हारा यह मानना बिलकुल गलत है कि उकाको छूनेमें पाप है।

यं. इं. २७-४-१९२१, १३५

३१. सन् १८८७ में मैंने मैट्रिककी परीक्षा पास की। *आत्म. २९*

३२. बड़ोंकी इच्छा थी कि मैट्रिक पास हो जाने पर मुझे आगे कॉलेजकी पढ़ाई करनी चाहिये। कॉलेज बम्बईमें भी था और भावनगरमें भी। भावनगरका खर्च कम था, इसलिए भावनगरके शामलदास कॉलेजमें भरती होनेका निश्चय हुआ | कॉलेजमें मुझे कुछ आता न था। सब कुछ मुश्किल मालूम होता था। अध्यापकोंके व्याख्यानोंमें न तो मुझे रस आता और न मैं उन्हें समझ पाता था। इसमें दोष अध्यापकोंका नहीं, किन्तु मेरी कमजोरीका ही था। उस समयके शामलदास कॉलेजके अध्यापक तो प्रथम पंक्तिके माने जाते थे। पहला सत्र पूरा करके मैं घर आया।

आत्म. २९

३३. कुटुंबके पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान, व्यवहार-कुशल ब्राह्मण...मेरी छुट्टीके दिनोंमें हमारे घर आये। माताजी और बड़े भाईके साथ बातचीत करते हुए उन्होंने मेरी पढ़ाईके बारेमें पूछताछ की। जब सुना कि मैं शामलदास कॉलेजमें हूँ, तो वे बोले: "अब जमाना बदल गया है।...आपको इसे विलायत भेजना चाहिये। केवलराम (मेरा लड़का) कहता है कि वहांकी पढ़ाई सरल है। तीन सालमें यह पढ़कर लौट आयेगा। खर्च भी चार-पांच हजारसे अधिक नहीं होगा। नये आये हुए बैरिस्टरोंको देखो, वे कैसे ठाठसे रहते हैं ! वे चाहें तो दीवानगीरी उन्हें आज मिल सकती है। मेरी तो सलाह है कि आप मोहनदासको इसी साल विलायत भेज दीजिये।"

आत्म. २९

३४. मेरी माताजीको कुछ सूझ न पड़ा।...कोई कहता, नौजवान लोग विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं; कोई कहता, वे मांसाहार करने लगते हैं; कोई कहता, वहां शराबके बिना तो चलता ही नहीं। माताजीने मुझे ये सारी बातें सुनायीं। मैंने कहा, "पर तू मेरा विश्वास नहीं करेगी? मैं तुझे धोखा नहीं दूंगा। सौगंद खाकर कहता हूँ कि मैं इन तीनों चीजोंसे बचूँगा। अगर ऐसा खतरा होता तो जोशीजी क्यों जाने देते?"...मैंने मांस, मदिरा तथा स्त्रीसंगसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा की। माताजीने जानेकी आज्ञा दे दी।

आत्म. ३०-३२

३५. अध्ययनके लिए लन्दन आनेके इरादेने निश्चित रूप लिया, उससे पहले भी यहां आकर लन्दनके विषयमें जाननेके अपने कुतूहलको शांत करनेकी छिपी इच्छा मेरे मनमें पड़ी हुई थी।

क. व. म. गां. – १, ३

३६. अठारह सालकी उमरमें मैं विलायत गया।...वहांके लोग विचित्र, उनका रहस-सहन विचित्र, उनके घर भी विचित्र, घरोंमें रहने का ढंग भी विचित्र ! क्या कहने और क्या करनेसे वहां शिष्टाचारके नियमोंका उल्लंघन होगा, इसकी जानकारी भी मुझे बहुत कम थी। तिस पर खाने-पीनेका परहेज। और खाने योग्य आहार सूखा तथा नीरस लगता था। इस कारण मेरी दशा सरौतेके

बीच सुपारी जैसी हो गयी। विलायतमें रहना मुझे अच्छा नहीं लगता था, और देशको लौटा नहीं जा सकता था। विलायत पहुंच जाने पर तो तीन साल वहां पूरे करनेका ही आग्रह था।

आत्म. ३८

३७. घरकी मालकिन मेरे लिए कुछ बनाये भी तो क्या बनाये? ...मित्र* मुझे मांस खानेके लिए समझाते थे। मैं प्रतिज्ञाकी आड़ लेकर चुप हो जाता था।...एक दिन मित्रने मेरे सामने बेन्थमका ग्रंथ पढ़ना शुरू किया। उपयोगितावादका अध्याय पढ़ा। मैं घबराया। उसकी भाषा ऊंची थी। मैं मुश्किलसे समझ पाता था। उन्होंने उसका विवेचन किया। मैंने उत्तर दिया: "मैं आपसे माफी चाहता हूँ। मैं ऐसी सूक्ष्म बातें समझ नहीं पाता। मैं स्वीकार करता हूँ कि मांस खाना चाहिये, पर मैं अपनी प्रतिज्ञाका बन्धन तोड़ नहीं सकता । उसके लिए मैं कोई दलील नहीं दे सकता।"

आत्म. ३८-३९

---

* एक सज्जन जिनके साथ गांधीजी रिचमॉन्डमें एक महीने ठहरे थे।

३८. मैं रोज दस-बारह मील चलता था। किसी मामूलीसे भोजनगृहमें जाकर पेटभर डबल-रोटी खा लेता था, पर उससे मुझे संतोष न होता था। इस तरह भटकते हुए एक दिन मैं फेरिंग्डन स्ट्रीट पहुंचा और वहां 'वेज़िटेरियन रेस्टरां' (अन्नाहारी भोजनालय) का नाम पढ़ा। इससे मुझे वह आनन्द हुआ जो बालकको मनचाही चीज मिलनेसे होता है। हर्षविभोर होकर अन्दर घुसनेसे पहले मैंने दरवाज़ेके पासकी शीशेवाली खिड़कीमें बिक्रीकी पुस्तकें देखीं। उनमें मुझे सॉल्टकी 'अन्नाहारकी हिमायत' नामक पुस्तक दिखाई दी। एक शिलिंगमें वह पुस्तक मैंने खरीद ली और फिर भोजन करने बैठा। विलायत आनेके बाद यहां पहली बार भरपेट भोजन मिला। ईश्वरने मेरी भूख मिटायी।

मैंने सॉल्टकी पुस्तक पढ़ी। मुझ पर उसकी अच्छी छाप पड़ी। इस पुस्तकको पढ़ा उस दिनसे मैं स्वेच्छापूर्वक अन्नाहारमें विश्वास करने लगा। माताके सामने की गयी प्रतिज्ञा अब मुझे विशेष आनन्द देने लगी। और जिस तरह अब तक मैं यह मानता था कि सब मांसाहारी बनें तो

अच्छा हो, और पहले केवल सत्यकी रक्षाके लिए तथा बादमें प्रतिज्ञापालनके लिए ही मैं मांसका त्याग करता था, और भविष्यमें किसी दिन स्वयं आज़ादीसे, प्रकट रूपमें मांस खाकर दूसरोंको मांस खानेवालोंके दलमें सम्मिलित करनेकी उमंग रखता था, उसी तरह अब स्वयं अन्नाहारी रहकर दूसरोंको अन्नाहारी बनानेका लोभ मुझमें जागा।

आत्म. ४०

३९. जो आदमी नया धर्म स्वीकारता है, उसमें उस धर्मके प्रचारका जोश उस धर्ममें जन्मे हुए लोगोंकी अपेक्षा अधिक पाया जाता है। विलायतमें तो अन्नाहार एक नया धर्म ही था, और मेरे लिए भी वह वैसा ही माना जायेगा; क्योंकि बुद्धिसे तो मैं मांसाहारका हिमायती बननेके बाद ही विलायत गया था। अन्नाहारकी नीतिको ज्ञानपूर्वक तो मैंने विलायतमें ही अपनाया था। अतएव मेरी स्थिति नये धर्ममें प्रवेश करने जैसी बन गयी थी, और मुझमें नवधार्मीका जोश आ गया था। इस कारण उस समय मैं जिस बस्तीमें रहता था, उसमें मैंने अन्नाहारी मण्डलकी स्थापना करनेका निश्चय किया। इस बस्तीका नाम बेज़वॉटर था। इसमें सर एडविन आर्नल्ड रहते थे। मैंने उन्हें उपसभापति बननेको निमंत्रित किया। वे बने। डॉ. ओल्डफील्ड, जो 'दि वेज़िटेरीयन' के सम्पादक थे, सभापति बने। मैं मंत्री बना।

आत्म. ४०

४०. अन्नाहारी मण्डलकी कार्यकारिणीमें मुझे चुन तो लिया गया था और उसमें मैं हर बार हाजिर भी रहता था, पर बोलनेके लिए मेरी जीभ खुलती ही नहीं थी।...मुझे बोलनेकी इच्छा न होती हो सो बात नहीं, पर बोलता क्या?...मेरी यह लज्जाशीलता विलायतमें अन्त तक बनी रही। किसीसे मिलने जाने पर भी जहां पांच-सात मनुष्योंकी मण्डली इकट्ठी होती वहां मैं गूंगा बन जाता था।

आत्म. ५०

४१. अपने इस शरमीले स्वभावके कारण मेरी फजीहत तो हुई, पर मेरा कोई नुकसान नहीं हुआ; बल्कि अब तो मैं यह देख सकता हूँ कि मुझे इससे फायदा हुआ है। पहले बोलनेका यह संकोच

मेरे लिए दुःखकर था, अब वह सुखकर हो गया है। एक बड़ा फायदा तो इससे यह हुआ कि मैं शब्दोंका मितव्यय करना सीखा।

आत्म. ५३

४२. सन् १८९० में पेरिसमें एक बड़ी प्रदर्शनी हुई थी। उसकी तैयारियोंके बारेमें मैं पढ़ता रहता था। पेरिस देखनेकी तीव्र इच्छा तो थी ही। मैंने सोचा कि यह प्रदर्शनी देखने जाऊँ तो मुझे दोहरा लाभ होगा। प्रदर्शनीमें एफिल टॉवर देखनेका आकर्षण बहुत था। यह टॉवर सिर्फ लोहेका बना है। एक हजार फुट ऊंचा है। इसके बननेसे पहले लोगोंकी यह कल्पना थी कि एक हजार फुट ऊंचा मकान खड़ा ही नहीं रह सकता। प्रदर्शनीमें और भी बहुत-कुछ देखने जैसा था।

आत्म. ६७

४३. प्रदर्शनीकी विशालता और विविधताके सिवा उसकी और कोई बात मुझे याद नहीं है। एफिल टावर पर तो मैं दो-तीन बार चढ़ा था, इसलिए उसकी मुझे अच्छी तरह याद है। पहली मंजिल पर खाने-पीनेका प्रबंध था। यह कह सकनेके लिए कि मैंने इतनी ऊंची जगह पर भोजन किया था, मैंने साढ़े सात शिलिंग फूंककर वहां खाना खाया।

पेरिसके प्राचीन गिरजाघरोंकी याद आज भी बनी हुई है। उनकी भव्यता और उनके अंदर मिलनेवाली शांति कभी भुलायी नहीं जा सकती । नोत्रदामकी कारीगरी और अन्दरकी चित्रकारीको मैं आज भी भूला नहीं हूँ। उस समय मनमें यह ख़याल आया था कि जिन्होंने लाखों रुपये खर्च करके ऐसे स्वर्गीय मंदिर बनवाये हैं, उनके दिलकी गहराईमें ईश्वर-प्रेम तो रहा ही होगा।

आत्म. ६७

४४. एफिल टॉवरके बारेमें दो शब्द कहना आवश्यक है। मैं नहीं जानता कि आज एफिल टॉवरका कया उपयोग हो रहा है। प्रदर्शनीमें जानेके बाद प्रदर्शनी-सम्बन्धी बातें तो पढ़नेमें आती ही थीं। उनमें मैंने उसकी स्तुति भी पढ़ी और निन्दा भी। मुझे याद है कि निन्दा करनेवालोंमें टॉल्स्टॉय मुख्य थे। उन्होंने लिखा था कि एफिल टॉवर मनुष्यकी मूर्खताका चिहन है, उसके ज्ञानका परिणाम

नहीं। अपने लेखमें उन्होंने बताया था कि दुनियामें प्रचलित कई तरहके नशोंमें तम्बाकुका व्यसन एक प्रकारसे सबसे ज्यादा ख़राब है। कुकर्म करनेकी जो हिम्मत मनुष्यमें शराब पीनेसे नहीं आती वह बीड़ी पीनेसे आती है। शराब पीनेवाला पागल हो जाता है, जब कि बीड़ी पीनेवालेकी मति पर धुआं छा जाता है, और इस कारण वह हवाई किले बनाने लगता है। टॉल्स्टॉयने अपनी यह सम्मति प्रकट की थी कि एफिल टॉवर ऐसे ही व्यसनका परिणाम है।

ऐफिल टॉवरमें सौंदर्य तो कुछ है ही नहीं। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसके कारण प्रदर्शनीकी शोभामें कोई वृद्धि हुई हो। वह एक नई चीज थी, बड़ी चीज थी, इसलिए हजारों लोग उसे देखनेके लिए उस पर चढ़े। यह टॉवर प्रदर्शनीका एक खिलौना था। और जब तक हम मोहवश हैं तब तक हम भी बालक हैं, यह बात इस टॉवर द्वारा भलीभांति सिद्ध होती है। मानना चाहें तो इतनी उपयोगिता उसकी मानी जा सकती है।

आत्म. ६८

४५. परीक्षायें पास करके मैं १० जून, १८९१ के दिन बैरिस्टर कहलाया। ११ जूनको ढाई शिलिंग देकर मैंने इंग्लैंडेके हाईकोर्टमें अपना नाम दर्ज कराया और १२ जूनको हिन्दुस्तानके लिए रवाना हुआ।

आत्म. ७१

४६. बड़े भाईने मुझ पर बड़ी-बड़ी आशायें बांध रखी थीं। उनको पैसेका, कीर्तिका और पदका बहुत लोभ था। उनका दिल बादशाही था। उदारता उन्हें फिजूलखर्चीकी हद तक ले जाती थी। इस कारण और अपने भोले स्वभावके कारण उन्हें मित्रता करनेमें देर नहीं लगती थी। इस मित्रमण्डलीकी मददसे वे मेरे लिए मुकदमे लानेवाले थे। उन्होंने यह भी मान लिया था कि मैं खूब कमाऊंगा, इसलिए घरखर्च उन्होंने बढ़ा रखा था। मेरे लिए वकालतका क्षेत्र तैयार करनेमें भी उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी।

आत्म. ७७

४७. लेकिन मैं चार-पांच महीनेसे अधिक बम्बईमें रह ही नहीं सकता था, क्योंकि मेरा खर्च बढ़ता जाता था और आमदनी कुछ भी नहीं थी। इस तरह मैंने संसारमें प्रवेश किया। बैरिस्टरी मुझे अखरने लगी। आडम्बर अधिक, कुशलता कम। अपनी जवाबदारीका ख़याल मुझे दबोच रहा था।

आत्म. ७९

४८. बम्बईसे निराश होकर मैं राजकोट पहुंचा। वहां मैंने अपना अलग दफ्तर खोला। गाड़ी कुछ ठीक चली। अर्जियाँ लिखनेका काम मिलने लगा, और हर महीने औसत रु० ३००की आमदनी होने लगी।

आत्म. ८३

४९. इस बीच भाईके पास पोरबन्दरकी एक मेमन फर्मका सन्देशा आया: "दक्षिण अफ्रीकामें हमारा व्यापार है। हमारी फर्म बड़ी है। वहां हमारा एक मुकदमा चल रहा है। चालीस हजार पौंडका दावा है। मामला बहुत लम्बे समयसे चल रहा है। हमारे पास अच्छे-से-अच्छे वकील-बैरिस्टर हैं। अगर आप अपने भाईको वहां भेजें, तो वे हमारी मदद करें और उन्हें भी कुछ मदद मिल जाये। वे हमारा मामला हमारे वकीलको अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके सिवा, वे नया देश देखेंगे, और कई नये लोगोंसे उनकी जान-पहचान होगी।"

आत्म. ८७

५०. इसे वकालत नहीं कह सकते। यह नौकरी थी। पर मुझे तो जैसे भी बने हिन्दुस्तान छोड़ना था। नया देश देखनेको मिलेगा और अनुभव प्राप्त होगा सो अलग। बड़े भाईको १०५ पौंड भेजूंगा तो घरका खर्च चलानेमें कुछ मदद होगी। यह सोचकर मैंने वेतनके बारेमें बिना कुछ झिक-झिक किये ही सेठ अब्दुल करीमका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और मैं दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए तैयार हो गया।

आत्म. ८८

५१. विलायत जाते समय वियोगके विचारसे जो दुःख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते समय नहीं हुआ। माता जो चल ही बसी थीं। "मैंने दुनियाका और यात्राका अनुभव प्राप्त कर लिया था।

राजकोट और बम्बईके बीच तो मेरा आना-जाना बना ही रहता था। इसलिए इस बार वियोग केवल पत्नीका ही दुःखदायी था। विलायतसे आनेके बाद एक और बालककी प्राप्ति हुई थी। हमारे बीचके प्रेममें अभी विषय-भोगका प्रभाव तो था ही, फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। मेरे-विलायतसे लौटनेके बाद हम दोनों बहुत कम साथ रह पाये थे। और शिक्षकके रूपमें मेरी योग्यता जो भी रही हो, परन्तु मैं पत्नीका शिक्षक बना था इसलिए और पत्नीमें जो कुछ सुधार मैंने कराये थे उन्हें निबाहनेके लिए भी हम दोनों साथ रहनेकी आवश्यकता अनुभव करते थे। पर आफ्रीका मुझे अपनी तरफ खींच रहा था। उसने वियोगको सह्य बना दिया।

आत्म. ८८

५२. नेटालके बन्दरगाहको डरबन कहा जाता है, और वह नेटाल बन्दरके नामसे भी पहचाना जाता है। मुझे लेनेके लिए अब्दुल्ला सेठ आये थे। स्टीमरके घाट (डक) पर पहुंचने पर जब नेटालके लोग अपने मित्रोंको लेने स्टीमर पर आये, तभी मैं समझ गया था कि यहां हिन्दुस्तानियोंकी अधिक इज़्ज़त नहीं है। अब्दुल्ला सेठको पहचाननेवाले उनके साथ जैसा बरताव करते थे, उसमें भी मुझे एक प्रकारकी असभ्यता दिखाई पड़ी जो मुझे व्यथित करती थी। अब्दुल्ला सेठ इस असभ्यताको सह लेते थे, उसके आदी बन गये थे। मुझे जो लोग देखते थे, वे कुछ कुतूहलकी दृष्टिसे देखते थे। अपनी पोशाकके कारण मैं दूसरे हिन्दुस्तानियोंसे अलग पड़ जाता था। मैंने उस समय 'फ्रॉक कोट' और बंगाली ढंगकी पगड़ी पहनी थी।

आत्म. ९१

५३. अब्दुल्ला सेठ दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबनकी अदालत दिखाने ले गये। वहां कुछ लोगोंसे मेरी जान-पहचान करायी। अदालतमें मुझे उन्होंने अपने वकीलके पास बैठाया। मजिस्ट्रेट मुझे बार-बार देखता रहा। अन्तमें उसने मुझे पगड़ी उतारनेके लिए कहा। मैंने उतारनेसे इनकार किया और अदालत छोड़ दी।

आत्म. ९२

५४. सातवें या आठवें दिन मैं डरबनसे (प्रिटोरियाके लिए) रवाना हुआ। मेरे लिए पहले दरजेका टिकट कटाया गया।...ट्रेन रातमें लगभग नौ बजे नेटालकी राजधानी मेरित्सबर्ग पहुंची। यहां बिस्तर दिया जाता था। रेलवेके किसी नौकरने आकर मुझसे पूछा, "आपको बिस्तरकी ज़रुरत है?"

मैंने कहा, "मेरे पास अपना बिस्तर है।"

वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी तरफ देखा। मुझे भिन्न वर्णका पाकर वह परेशान हुआ, बाहर निकला और एक-दो अफसरोंको लेकर आया। किसीने मुझसे कुछ न कहा। आखिर एक दूसरा अफसर आया। उसने कहा, "इधर आओ। तुम्हें आखिरी डिब्बेमें जाना है।"

मैंने कहा, "मेरे पास पहले दरजेका टिकट है।"

उसने जवाब दिया, "इसकी कोई बात नहीं। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डिब्बेमें जाना है।

"मैं कहता हूँ कि मुझे इस डिब्बेमें डरबनसे बैठाया गया है, और मैं इसीमें जानेका आग्रह रखता हूँ।

अफसरने कहा, "यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना पड़ेगा, और न उतरे तो सिपाही उतारे।"

मैंने कहा, "तो फिर सिपाही भले उतारे, मैं खुद तो नहीं उतरूंगा।"

सिपाही आया। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे धक्का देकर नीचे उतारा। मेरा सामान उतार लिया गया। मैंने दूसरे डिब्बेमें जानेसे इनकार कर दिया। ट्रेन चल दी। मैं वेटिंग रूममें बैठ गया। अपना 'हेण्डबेग' साथमें रखा। बाकी सामानको हाथ न लगाया। रेलवेवालोंने उसे कहीं रख दिया।

सर्दीका मौसम था। दक्षिण अफ्रीकाकी सर्दी ऊंचाईवाले प्रदेशोंमें बहुत तेज़ होती है। मेरित्सबर्ग इसी प्रदेशमें था। इससे ठण्ड खूब लगी। मेरा ओवर-कोट मेरे सामानमें था। पर सामान मांगनेकी मेरी हिम्मत न हुई। फिर कहीं अपमान हो तो? ठण्डसे मैं कांपता रहा। कमरेमें दीया न था। आधी रातके करीब एक यात्री आया। जान पड़ा कि वह कुछ बात करना चाहता है। पर मैं बात करनेकी मनःस्थितिमें नथा।

मैंने अपने धर्मका विचार किया: "या तो मुझे अपने अधिकारोंके लिए लड़ना चाहिये या देश लौट जाना चाहिये; नहीं तो जो अपमान हो उन्हें सहकर प्रिटोरिया पहुंचना चाहिये और मुकदमा खतम करके देश लौट जाना चाहिये। मुकदमा अधूरा छोड़कर भागना तो नामर्दी होगी। मुझे जो कष्ट सहना पड़ा है सो तो ऊपरी कष्ट है। वह गहराई तक पैठे हुए महारोगका लक्षण है। यह महारोग है – रंगद्वेष। यदि मुझमें इस गहरे रोगको मिटानेकी शक्ति हो, तो उस शक्तिका उपयोग मुझे करना चाहिये। ऐसा करते हुए स्वयं जो कष्ट सहने पड़ें वे सब सहने चाहिये, और उनका विरोध रंगद्वेषको मिटानेकी दृष्टिसे ही करना चाहिये।'

यह निश्चय करके मैंने दूसरी ट्रेनमें, जैसे भी हो, आगे ही जानेका फैसला किया।

आत्म. ९६-९७

५५. मेरा पहला कदम तो सब हिन्दुस्तानियोंकी एक सभा करके उनके सामने उनकी सच्ची स्थितिका चित्र खड़ा कर देना था।

आत्म. १०९

५६. इस सभामें मैंने जो भाषण दिया वह मेरे जीवनका पहला भाषण माना जा सकता है। मैंने काफी तैयारी की थी। मुझे सत्य पर बोलना था। मैं व्यापारियोंके मुंहसे यह सुनता आ रहा था कि व्यापारमें सत्य नहीं चल सकता। इस बातको मैं तब भी नहीं मानता था और आज भी नहीं मानता। यह कहनेवाले व्यापारी मित्र आज भी मौजूद हैं कि व्यापारके साथ सत्यका मेल नहीं बैठ सकता। वे व्यापारको व्यवहार कहते हैं, सत्यको धर्म कहते हैं, और दलील यह देते हैं कि व्यवहार एक चीज है, धर्म दूसरी। उनका यह विश्वास है कि व्यवहारमें शुद्ध सत्य चल ही नहीं सकता; उसमें तो

सत्य यथाशक्ति ही बोला-बरता जा सकता है। अपने भाषणमें मैंने इस बातका डटकर विरोध किया और व्यापारियोंको उनके दोहरे कर्तव्यका स्मरण कराया। परदेशमें आनेसे उनकी जिम्मेदारी देशकी अपेक्षा अधिक हो गयी है, क्योंकि यहां मुट्ठीभर हिन्दुस्तानियोंकी रहन-सहनसे हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको नापा-तौला जाता है।

आत्म. १०९

५७. पटरी पर चलनेका प्रश्न मेरे लिए कुछ गंभीर परिणामवाला सिद्ध हुआ। मैं हमेशा प्रेसिडेण्ट स्ट्रीटके रास्ते एक खुले मैदानमें घूमने जाया करता था। इस मुहल्लेमें प्रेसिडेण्ट क्रूगरका घर था। यह घर सब तरहके आडंबरोंसे रहित था। इसके चारों ओर कोई अहाता भी न था। आसपासके दूसरे घरोंमें और इसमें कोई फरक मालूम नहीं होता था। प्रिटोरियामें कई लखपतियोंके घर इसकी तुलनामें बहुत बड़े और शानदार अहातेवाले थे। प्रेसिडेण्टकी सादगी प्रसिद्ध थी। घरके सामने पहरा देनेवाले संतरीको देखकर ही पता चलता था कि यह किसी अधिकारीका घर है। मैं प्रायः हमेशा ही इस सिपाहीके बिलकुल पाससे होकर निकलता था, पर सिपाही मुझसे कुछ नहीं कहता था ।

सिपाही समय-समय पर बदला करते थे। एक बार एक सिपाहीने बिना चेताये, पटरी परसे उतर जानेको कहे बिना, मुझे धक्का मारा, लात मारी और नीचे उतार दिया। मैं तो गहरे सोचमें पड़ गया। लात मारनेका कारण पूछनेसे पहले ही मि० कोट्सने, जो उसी समय घोड़े पर सवार होकर उधरसे गुजर रहे थे, मुझे पुकारा और कहा:

"गांधी, मैंने सब कुछ देखा है। आप मुकदमा चलाना चाहें तो मैं गवाही दूंगा। मुझे इस बातका बड़ा खेद है कि आप पर इस तरह हमला किया गया।

मैंने कहा: "इसमें खेदका कोई कारण नहीं। सिपाही बेचारा क्या जाने? उसके लिए तो काले-काले सब एकसे ही हैं। वह हब्शियोंको सी तरह पटरी परसे उतारता होगा। इसलिए उसने मुझे भी धक्का मारा। मैंने तो नियम ही बना लिया है कि मुझ पर जो कुछ बीतेगी उसके लिए अदालतमें नहीं जाऊंगा। इसलिए मुझे मुकदमा नहीं चलाना है।

आत्म. ११३

५८. इस घटनाने प्रवासी भारतीयोंके प्रति मेरी भावनाको अधिक तीव्र बना दिया।...इस तरह मैंने हिन्दुस्तानियोंकी दुर्दशाका ज्ञान पढ़कर, सुनकर और अनुभव करके प्राप्त किया। मैंने देखा कि स्वाभिमानकी रक्षा चाहनेवाले हिन्दुस्तानियोंके लिए दक्षिण अफ्रीका रहने लायक देश नहीं है। यह स्थिति किस तरह बदली जा सकती है, इसके विचारमें मेरा मन अधिकाधिक व्यस्त रहने लगा।"

आत्म. ११३-१४

५९. प्रिटोरियामें मुझे जो एक वर्ष मिला, वह मेरे जीवनका अमूल्य वर्ष था। सार्वजनिक काम करनेकी अपनी शक्तिका कुछ अंदाज मुझे यहां हुआ। उसे सीखनेका अवसर यहीं मिला। मेरी धार्मिक भावना अपने-आप तीव्र होने लगी और कहना होगा कि सच्ची वकालत भी मैं यहीं सीखा।

आत्म. ११४

६०. मैंने देखा कि वकीलका कर्तव्य दोनों पक्षोंके बीच खुदी हुई खाईको पाटना है। इस शिक्षाने मेरे मनमें ऐसी जड़ जमायी कि बीस सालकी अपनी वकालतका मेरा अधिकांश समय अपने दफ्तरमें बैठकर सैकड़ों मामलोंको आपसमें सुलझानेमें ही बीता। उसमें मैंने कुछ खोया नहीं। आत्मा तो खोयी ही नहीं।

आत्म. ११६-१७

६१. जैसी जिसकी भावना वैसा उसका फल, इस नियमको मैंने अपने बारेमें अनेक बार घटित होते देखा है। जनताकी अर्थात् गरीबोंकी सेवा करनेकी मेरी प्रबल इच्छाने गरीबोंके साथ मेरा संबंध हमेशा अनायास ही जोड़ दिया है और उनके साथ एकरूप होनेकी शक्ति मुझे प्रदान की है।

आत्म. १३२

६२. मुझे वकालत शुरू किये अभी मुश्किलसे दो-चार महीने हुए थे। कांग्रेसका* भी बचपन था। इतनेमें एक दिन बालासुन्दरम् नामका एक मद्रासी हिन्दुस्तानी हाथमें साफा लिये रोता-रोता मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके कपड़े फ़टे हुए थे, वह थर-थर कांप रहा था, उसके मुंहसे खून बह रहा था और उसके आगेके दो दांत टूटे हुए थे। उसके मालिकने उसे बुरी तरह मारा था। तामिल

समझनेवाले अपने मुहर्रिरके द्वारा मैंने उसकी स्थिति जान ली। बालासुन्दरम् एक प्रतिष्ठित गोरेके यहां मज़दूरी करता था। मालिक किसी वजहसे उस पर गुस्सा हुआ होगा। उसे होश न रहा और उसने बालासुन्दरम् की खूब जमकर पिटाई की। परिणाम-स्वरूप बालासुन्दरम्के दो दांत टूट गये।

मैंने उसे डॉक्टरके यहां भेजा। उन दिनों गोरे डॉक्टर ही मिलते थे। मुझे चोट-सम्बन्धी प्रमाणपत्रकी आवश्यकता थी। उसे प्राप्त करके मैं बालासुन्दरम्को मजिस्ट्रेके पास ले गया। वहां बालासुन्दरम्का शपथपत्र प्रस्तुत किया। उसे पढ़कर मजिस्ट्रेटको मालिक पर गुस्सा हुआ। उसने मालिकके नाम समन जारी करनेका हुक्म दिया।

आत्म. १३२

———————————

* नेटाल इंडियन कांग्रेस: नेटाल विधान-सभामें हिन्दुस्तानियोंका मतदानका अधिकार रद करनेके लिए जो बिल पेश किया गया था, उसके ख़िलाफ़ आन्दोलन करने के लिए गांधीजीने इस कांग्रेसका संगठन किया था।

६३. बालासुन्दरम् के मामलेकी बात गिरमिटियोंमें चारों तरफ फैल गयी और मैं उनका बन्धु मान लिया गया। मुझे यह बात अच्छी लगी। मेरे दफ्तरमें गिरमिटियोंका तांता-सा लग गया और मुझे उनके सुख-दुःख जाननेकी बड़ी सुविधा हो गयी।

आत्म. १३३

६४. दूसरोंको अपमानित करके लोग अपनेको सम्मानित कैसे समझ सकते हैं, इस पहेलीको मैं आज तक हल नहीं कर सका हूँ।

आत्म. १३४

६५. मैं हिन्दुस्तानी समाजकी सेवामें ओतप्रोत हो गया, उसका कारण आत्मदर्शनकी मेरी अभिलाषा थी। ईश्वरकी पहचान सेवासे ही होगी, यह मानकर मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया था। मैं हिन्दुस्तानीकी सेवा करता था, क्योंकि वह सेवा मुझे अनायास प्राप्त हुई थी। मुझे उसकी रुचि

थी। मुझे उसे खोजने नहीं जाना पड़ा था। मैं तो यात्रा करने, काठियावाड़के षड्यंत्रोंसे बचने और आजीविका खोजनेके लिए दक्षिण अफ्रीका गया था, परन्तु पड़ गया ईश्वरकी खोजमें – आत्मदर्शनके प्रयत्नमें।

आत्म. १३७

६६. शुद्ध राजनिष्ठा जितनी मैंने अपनेमें अनुभव की है, उतनी शायद ही दूसरेमें देखी हो। मैं यह देख सकता हूँ कि इस राजनिष्ठाका मूल सत्य पर मेरा स्वाभाविक प्रेम था। राजनिष्ठाका अथवा दूसरी किसी वस्तुका स्वांग मुझसे कभी भरा ही नहीं गया। नेटालमें जब किसी सभामें मैं जाता तो वहां 'गॉड सेव दि किंग' (ईश्वर राजाकी रक्षा करे) गीत अवश्य गाया जाता था। मैंने अनुभव किया कि मुझे भी उसे गाना चाहिये। ब्रिटिश राजनीतिमें दोष तो मैं तब भी देखता था, फिर भी कुल मिलाकर मुझे वह नीति अच्छी लगती थी। उस समय मैं मानता था कि ब्रिटिश शासन कुल मिलाकर (हिन्दुस्तानकी) जनताका पोषण करनेवाला है।

दक्षिण अफ्रीकामें मैं इससे उलटी नीति देखता था, वर्ण-द्वेष देखता था। मैं मानता था कि यह क्षणिक और स्थानिक है। इस कारण राजनिष्ठामें मैं अंग्रेजोंसे भी आगे बढ़ जानेका प्रयत्न करता था। मैंने लगनके साथ मेहनत करके अंग्रेजोंके राष्ट्रगीत 'गॉड सेव दि किंग' की लय सीख ली थी। जब वह सभाओंमें गाया जाता तो मैं अपना सुर उसमें मिला दिया करता था। और जो भी अवसर आडम्बरके बिना राजनिष्ठा प्रदर्शित करनेके आते उनमें मैं सम्मिलित होता था।

इस राजनिष्ठाको अपनी ज़िन्दगीमें मैंने कभी भुनाया नहीं। इससे व्यक्तिगत लाभ उठानेका मैंने कभी विचार तक नहीं किया। राजभक्तिको ऋण समझ कर मैंने सदा ही उसे चुकाया है।

आत्म. १४९

६७. अब मैं दक्षिण अफ्रीकामें तीन साल रह चुका था। मैं (वहांके हिन्दुस्तानी) लोगोंको पहचानने लगा था और वे मुझे पहचानने लगे थे। सन् १८९६ में मैंने छह महीनोंके लिए देश जानेकी इजाज़त मांगी। मैंने देखा कि मुझे दक्षिण अफ्रीकामें लम्बे समय तक रहना पड़ेगा। कहा जा सकता है कि

मेरी वकालत ठीक चल रही थी। सार्वजनिक काममें हिन्दुस्तानी लोग मेरी उपस्थितिकी आवश्यकता अनुभव कर रहे थे; मैं भी करता था। इससे मैंने दक्षिण आफ़्रीकामें सपरिवार रहनेका निश्चय किया और उसके लिए देश हो आना ठीक समझा।

आत्म. १४३

६८. कुटुम्बके साथ यह मेरी पहली समुद्री यात्रा थी।...जिस समयकी बात मैं लिख रहा हूँ उस समय मैं ऐसा मानता था कि सभ्य माने जानेके लिए हमारा बाहरी आचार-व्यवहार यथासंभव यूरोपियनोंसे मिलता-जुलता होना चाहिए। ऐसा करनेसे ही लोगों पर प्रभाव पड़ सकता है और बिना प्रभाव पड़े देशसेवा नहीं हो सकती ।...इस कारण पत्नीकी और बच्चोंकी वेशभूषा मैंने ही पसंद की ।...भारतीयोंमे पारसी अधिक-से-अधिक सभ्य माने जाते थे। अतएव जहां यूरोपियन पोशाकका अनुकरण करना अनुचित प्रतीत हुआ वहां मैंने पारसी पोशाक अपनायी।... उतनी ही लाचारी और उससे भी अधिक अरुचिसे ख़ानेमें उन्होंने छुरी-कांटेका उपयोग शुरू किया। बादमें जब सभ्यताके इन चिह्नोंका मेरा मोह दूर हुआ तब उन्होंने फिरसे बूट-मोजे, छुरी-कांटे इत्यादिका त्याग किया। शुरूमें जिस तरह ये परिवर्तन दुःखदायक थे, उसी तरह आदत पड़ जानेके बाद उनका त्याग भी कष्टप्रद था। पर आज तो मैं देखता हूँ कि हम सब 'सभ्यता' की कैंचुल उतार कर हलके हो गये हैं।

आत्म. १५९-६०

६९. हमारे जहाज़ने अठारह या उन्नीस दिसम्बरको डरबनके बन्दरगाहमें लंगर डाला।

आत्म. १६१

७०. डॉक्टरने आदेश दिया कि बम्बई छोड़नेके बाद तेईस दिनकी अवधि पूरी होने तक स्टीमरको सूतकमें रखा जाय। पर इस सूतककी आज्ञाका हेतु केवल स्वास्थ्य-रक्षा नहीं था। डरबनके गोरे नागरिक हमें उलटे पैरों लौटा देनेका जो आंदोलन कर रहे थे, वह भी इस आज्ञाके मूलमें एक कारण था।... उसका हेतु किसी भी तरह एजेण्टको अथवा यात्रियोंको दबा कर हमें (हिन्दुस्तान) वापस भेजना था। एजेण्टको तो धमकी मिलती ही थी। अब हमारे नाम भी धमकियां आने लगीं:

"अगर तुम वापस न गये तो तुम्हें समुद्रमें डुबो दिया जायगा। लौट जाओगे तो लौटनेका भाड़ा भी शायद तुम्हें मिल जाये।" मैं यात्रियोंके बीच खूब घूमा-फिरा। मैंने उन्हें धीरज बंधाया।

आत्म. १६१-६२

७१. अन्तमें यात्रियोंको और मुझे अल्टिमेटम मिले। दोनोंको धमकी दी गयी कि तुम्हारी जान खतरेमें है। दोनोंने नेटालके बन्दर पर उतरनेके अपने अधिकारके विषयमें लिखा और अपना यह निश्चय घोषित किया कि कैसा भी संकट क्यों न आये, हम अपने इस अधिकार पर डटे रहेंगे।

आखिर तेईसवें दिन अर्थात् १३ जनवरी, १८९७ के दिन स्टीमरोंको मुक्ति मिली और यात्रियोंको उतरनेका आदेश दिया गया।

आत्म. १६४

७२. जैसे ही हम जहाज़से उतरे, कुछ लड़कोंने मुझे पहचान लिया और वे 'गांधी गांधी' चिल्लाने लगे। तुरन्त ही कुछ लोग इकट्ठा हो गये और चिल्लाहट बढ़ गयी ।... हम आगे बढ़े। भीड़ भी बढ़ती गयी। खासी भीड़ जमा हो गयी ।... फिर मुझ पर कंकरों और सड़े अण्डोंकी वर्षा शुरू हुई। किसीने मेरी पगड़ी उछाल कर फेंक दी। फिर लातें शुरू हुईं। मुझे गश आ गया। मैंने पासके घरकी जाली पकड़ ली और दम लिया। वहां खड़ा रहना तो सम्भव ही नहीं था। तमाचे पड़ने लगे। इतनेमें पुलिस अधिकारीकी स्त्री, जो मुझे पहचानती थी, उस रास्तेसे गुजरी। मुझे देखते ही वह मेरी बगलमें आकर खड़ी हो गयी और धूपके न रहते हुए भी उसने अपनी छत्री खोल ली। इससे भीड़ कुछ नरम पड़ी | अब मुझ पर प्रहार करने हों तो मिसेज़ एलेक्ज़ेंडरको बचाकर ही किये जा सकते थे।

आत्म. १६४-६५

७३. उस समयके उपनिवेश-मन्त्री स्व० मि० चेम्बरलेनने तार द्वारा नेटाल सरकारको सूचित किया कि मुझ पर हमला करनेवालों पर मुकदमा चलाया जाय और मुझे न्याय दिलाया जाय। मि. एस्कम्बने मुझे अपने पास बुलाया | मुझे लगी हुई चोटके लिए खेद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा,

"आप यह तो मानेंगे ही कि आपका बाल भी बांका हो, तो मुझे उससे कभी खुशी नहीं हो सकती। ... अगर आप हमला करनेवालोंको पहचान सकें, तो मैं उन्हें गिरफ्तार करवाने और उन पर मुकदमा चलानेको तैयार हूँ। चेम्बरलेन भी यही चाहते हैं।"

मैंने जवाब दिया: "मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। सम्भव है, हमला करनेवालोमें से एक-दोको मैं पहचान लूं। पर उन्हें सजा दिलानेसे मुझे क्या लाभ होगा? फिर, मैं हमला करनेवालोंको दोषी भी नहीं मानता। उनसे तो यह कहा गया है कि मैंने हिन्दुस्तानमें बातका बतंगड़ बनाकर नेटालके गोरोंको बदनाम किया है। वे इस बातको मानकर गुस्सा हों, तो इसमें आश्चर्य क्या है? दोष तो बड़ोंका और, मुझे कहनेकी इजाज़त दें तो, आपका माना जाना चाहिये। आप लोगोंको सही रास्ता दिखा सकते थे, पर आपने भी रायटरके तारको ठीक माना और यह कल्पना कर ली कि मैंने अतिशयोक्ति की होगी। मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। जब वस्तुस्थिति प्रकट होगी और लोगोंको पता चलेगा, तो वे अपने व्यवहारके लिए खुद पछतायेंगे।"

आत्म. १६७

७४. जिस दिन मैं जहाजसे उतरा उसी दिन, अर्थात् पीला झण्डा उतरनेके बाद तुरन्त 'नेटाल एडवर्टाइज़र' नामक पत्रका प्रतिनिधि मुझसे मिलने आया था। उसने मुझसे प्रश्न पूछे थे, और उनके उत्तरमें मैं प्रत्येक आरोपका पूरा-पूरा जवाब दे सका था।...इस खुलासेका और हमलावरों पर मुकदमा दायर करनेसे मेरे इनकार करनेका असर इतना ज्यादा पड़ा कि गोरे शरमिन्दा हुए। समाचारपत्रोंने मुझे निर्दोष सिद्ध किया और हुल्लड़ करनेवालोंकी निन्दा की। इस प्रकार परिणाममें तो मुझे लाभ ही हुआ, और मेरा लाभ मेरे कार्यका ही लाभ था। इससे भारतीय समाजकी प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरा मार्ग अधिक सरल हो गया।

आत्म. १६८

७५. वकालतका मेरा धन्धा अच्छा चल रहा था, पर उससे मुझे संतोष नहीं था। ...उससे मुझे आश्वासन न मिला। मनमें हमेशा यह विचार बना रहता था कि सेवा-शुश्रूषाका ऐसा कुछ काम मैं हमेशा करता रहूं तो कितना अच्छा हो।...इसलिए मैं एक छोटेसे अस्पतालमें काम करने लगा।

रोज सवेरे वहां जाना होता था। आने-जानेमें और अस्पतालका काम करनेमें प्रतिदिन लगभग दो घण्टे लगते थे। इस कामसे मुझे थोड़ी शांति मिली। मेरा काम बीमारकी हालत समझ कर उसे डॉक्टरको समझानेका और डॉक्टरकी लिखी दवा तैयार करके बीमारको देनेका था। इस कामसे मैं दु:खी-दर्दी हिन्दुस्तानियोंके निकट संपर्कमें आया। उनमें अधिकांश तामिल, तेलुगु अथवा उत्तर हिन्दुस्तानके गिरमिटिया होते थे।

यह अनुभव मेरे लिए भविष्यमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। बोअर-युद्धके समय घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाके काममें और दूसरे बीमारोंकी परिचर्यामें मुझे इससे बड़ी मदद मिली।

आत्म. १७३-७४

७६. अन्तिम शिशुके जन्मके समय मेरी पूरी-पूरी परीक्षा हो गयी। पत्नीको प्रसव-वेदना अचानक शुरू हुई। डॉक्टर घर पर नहीं थे। दाईको बुलवाना था। वह पास होती तो भी उससे प्रसव करानेका काम नहीं हो पाता। अतः प्रसवके समयका सारा काम मुझे अपने हाथों ही करना पड़ा।

आत्म. १७५

७७. मेरा यह विश्वास है कि अपने बालकोंके समुचित पालन-पोषणके लिए माता-पिता दोनोंको बाल-संगोपन आदिका साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। मैंने तो इस विषयकी अपनी सावधानीका लाभ पग-पग पर अनुभव किया है। मेरे बालक आज जिस सामान्य स्वास्थ्यका लाभ उठा रहे हैं उसे वे उठा नहीं पाते, यदि मैंने इस विषयका सामान्य ज्ञान प्राप्त करके उस पर अमल न किया होता। हम लोगोंमें यह भ्रम फैला हुआ है कि पहले पांच वर्षोंमें बालकको शिक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती। पर सच तो यह है कि पहले पांच वर्षोंमें बालकको जो मिलता है वह बादमें कभी नहीं मिलता। मैं यह अनुभवसे कह सकता हूँ कि बच्चेकी शिक्षा मांके पेटमें आनेके समयसे ही शुरू होती है।

आत्म. १७५

७८. जो समझदार दम्पती इन बातों पर विचार करेंगे, वे पति-पत्नीके संगको कभी विषय-वासनाकी तृप्तिका साधन नहीं बनायेंगे, बल्कि जब उन्हें सन्तानकी इच्छा होगी तभी सहवास करेंगे। रतिसुख एक स्वतंत्र वस्तु है। इस धारणामें मुझे तो घोर अज्ञान ही दिखाई पड़ता है। जननक्रिया पर संसारके अस्तित्वका आधार है। संसार ईश्वरकी लीलाभूमि है, उसकी महिमाका प्रतिबिम्ब है। उसकी सुव्यवस्थित वृद्धिके लिए ही रतिक्रियाका निर्माण हुआ है, इस बातको समझनेवाला मनुष्य विषय-वासनाको महाप्रयत्न करके भी अंकुशमें रखेगा; और रतिसुखके परिणाम-स्वरूप होनेवाली संततिकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रक्षाके लिए जिस ज्ञानकी प्राप्ति आवश्यक हो, उसे प्राप्त करके उसका लाभ अपनी सन्तानको देगा।

आत्म. १७५-७६

७९. अच्छी तरह चर्चा करने और गहराईसे सोचनेके बाद सन् १९०६ में मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। व्रत लेनेके दिन तक मैंने धर्मपत्नीके साथ सलाह नहीं की थी; पर व्रत लेते समय की। उसकी ओरसे मेरा कोई विरोध नहीं हुआ। यह व्रत मेरे लिए बहुत कठिन सिद्ध हुआ। मेरी शक्ति कम थी। मैं सोचता, विकारोंको मैं किस तरह दबा सकूंगा? अपनी पत्नीके साथ विकारयुक्त सम्बन्धका त्याग मुझे एक अनोखी बात मालूम होती थी। फिर भी मैं यह साफ देख सकता था कि यही मेरा कर्तव्य है। मेरी नियत शुद्ध थी। यह सोचकर कि भगवान शक्ति देगा, मैं इसमें कूद पड़ा।

आज बीस बरसके बाद उस व्रतका स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्यर्च होता है। संयम पालनेकी वृत्ति तो मुझमें १९०१ से ही प्रबल थी, और मैं संयम पाल भी रहा था; पर जिस स्वतंत्रता और आनन्दका उपभोग मैं अब करने लगा हूँ, सन् १९०६ के पहले उसके वैसे उपभोगका मुझे कोई स्मरण नहीं है। क्योंकि उस समय मैं वासनाबद्ध था, किसी भी समय उसके वश हो सकता था। अब वासना मुझ पर सवारी करनेमें असमर्थ हो गई है।

आत्म. १७९

८०. इस प्रकार यद्यपि मैं इस व्रतमें से दिनोंदिन अधिक रस लूट रहा था, तो भी कोई यह न माने कि मैं उसकी कठिनाईका अनुभव नहीं करता था। आज मुझे छप्पन वर्ष पूरे हो चुके हैं, फिर भी

इसकी कठिनताका अनुभव तो मुझे होता ही है। यह एक असिधारा-व्रत है, इसे मैं अधिकाधिक समझ रहा हूँ और निरन्तर जागृतिकी आवश्यकता अनुभव करता हूँ।

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही चाहिये। मैंने स्वयं यह अनुभव किया है कि यदि स्वादको जीत लिया जाय, तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत सरल हो जाता है। इसी कारण अबसे आगेके मेरे आहार-सम्बन्धी प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे भी होने लगे।

आत्म. १८०

८१. खान-पानके साथ आत्माका कोई संबंध नहीं है। वह न खाती है, न पीती है। जो पेटमें जाता है वह नहीं, बल्कि जो वचन अन्दरसे निकलते हैं, वे हानि-लाभ पहुंचानेवाले होते हैं – इत्यादि दलीलोंसे मैं परिचित हूँ। इनमें सत्यका अंश है। पर बिना दलील किये मैं यहां अपना यह दृढ़ निश्चय ही प्रकट किये देता हूँ कि जो मनुष्य ईश्वरसे डरकर चलना चाहता है, जो ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा रखता है, ऐसे साधक और मुमुक्षुके लिए अपने आहारका चुनाव – त्याग और स्वीकार – उतना ही आवश्यक है, जितना कि विचार और वाणीका चुनाव – त्याग और स्वीकार – आवश्यक है।

आत्म. २३५

८२. भोग भोगना मैंने शुरू तो किया, पर वह टिक न सका। घरके लिए साज-सामान भी बसाया, पर मेरे मनमें उसके प्रति कभी मोह उत्पन्न नहीं हो सका। इसलिए घर बसाते ही मैंने खर्च कम करना शुरू कर दिया। धोबीका खर्च भी मुझे ज्यादा मालूम हुआ। इसके अलावा, धोबी निश्चित समय पर कपड़े नहीं लौटाता था। इसलिए दो-तीन दर्जन कमीजों और उतने ही कालरोंसे भी मेरा काम चल नहीं पाता था। कालर मैं रोज बदलता था। कमीज रोज नहीं तो एक दिनके अन्तरसे बदलता था। इससे दोहरा खर्च होता था। मुझे यह व्यर्थ प्रतीत हुआ। अतएव मैंने धुलाईका सामान जुटाया। धुलाई-कला पर पुस्तक खरीदकर पढ़ी और धोना सीखा। पत्नीको भी सिखाया। कामका कुछ बोझ तो बढ़ा ही, पर नया काम होनेसे उसे करनेमें आन्नद आता था।

पहली बार अपने हाथों धोये हुए कालरको तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता। उसमें कलफ अधिक लग गया था और इस्तरी पूरी गरम नहीं हुई थी। तिस पर कालरके जल जानेके डरसे इस्तरीक मैंने अच्छी तरह दबाया भी नहीं था। इससे कालरमें कड़ापन तो आ गया, पर उसमें से कलफ झड़ता रहता था। ऐसी हालतमें मैं कोर्ट गया और वहां बैरिस्टरोंके लिए मजाकका साधन बन गया। पर इस तरहका मजाक सह लेनेकी शक्ति उस समय भी मुझमें काफी थी।

आत्म. १८२-८३

८३. जिस तरह मैं धोबीकी गुलामीसे छूटा, उसी तरह नाईकी गुलामीसे भी छूटनेका अवसर आ गया। हजामत तो विलायत जानेवाले सब कोई हाथसे बनाना सीख ही लेते हैं, पर कोई बाल छांटना भी सीखता होगा इसका मुझे ख़याल नहीं है। एक बार प्रिटोरियामें मैं एक अंग्रेज हज्जामकी दुकान पर पहुंचा। उसने मेरी हजामत बनानेसे साफ इनकार कर दिया, और इनकार करते हुए तिरस्कार प्रगट किया सो घातेमें रहा। मुझे दुःख हुआ। मैं बाजार पहुंचा। मैंने बाल काटनेकी मशीन खरीदी और आईनेके सामने खड़े रहकर अपने बाल काटे। बाल जैसे-तैसे कट तो गये, पर पीछेके बाल काटनेमें बड़ी कठिनाई हुई। सीधे तो कट ही नहीं पाये। कोर्टमें खूब कहकहे लगे।

"तुम्हारे बाल ऐसे क्यों हो गये हैं? सिर पर चूहे तो नहीं चढ़ गये थे?"

मैंने कहा: "जी नहीं, मेरे काले सिरको गोरा हज्जाम कैसे छू सकता है? इसलिए कैसे भी क्यों न कटे हों, अपने हाथसे काटे हुए बाल मुझे अधिक प्रिय हैं।"

इस उत्तरसे मित्रोंको आश्चर्य नहीं हुआ। असलमें उस हज्जामका कोई दोष न था। अगर वह काली चमड़ीवालोंके बाल काटने लगता, तो उसकी रोजी मारी जाती।

आत्म. १८३

८४. जब बोअर-युद्ध हुआ तब मेरी अपनी सहानुभूति केवल बोअरोंकी तरफ ही थी। परन्तु मैं मानता था कि ऐसे मामलोंमें व्यक्तिगत विचारोंके अनुसार काम करनेका अधिकार मुझे अभी

प्राप्त नहीं हुआ है। इस विषयमें अपने मंथन-चिन्तनका सूक्ष्म निरीक्षण मैंने 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' में किया है, इसलिए यहां नहीं करना चाहता। जिज्ञासुओंको मेरी यह सलाह है कि वे उस तिहासको पढ़ जायें। यहां इतना ही कहना काफी होगा कि ब्रिटिश राज्यके प्रति मेरी वफादारी मुझे उस युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए जबरदस्ती घसीट ले गयी। मैंने अनुभव किया कि जब मैं ब्रिटिश प्रजाजनके नाते अधिकार मांग रहा हूँ, तो उसी प्रजाजनके नाते ब्रिटिश राज्यकी रक्षामें हाथ बंटाना भी मेरा धर्म है। उस समय मेरी यह राय थी कि हिन्दुस्तानकी संपूर्ण उन्नति ब्रिटिश साम्राज्यके अन्दर रहकर ही हो सकती है। अतएव जितने साथी मिले उतनोंको लेकर और अनेक कठिनाइयां सहकर हमने घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली एक टुकड़ी खड़ी की।

आत्म. १८५

८५. इस तरह दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी सेवा करते हुए मैं स्वयं धीरे-धीरे कई बातें अनायास सीख रहा था। सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। जैसे-जैसे हम उसकी गहराईमें उतरते जाते हैं, वैसे-वैसे उसमें से हमें अधिक रत्न मिलते जाते हैं, सेवाके अवसर प्राप्त होते रहते हैं।

आत्म. १८९

८६. मनुष्य और उसका काम – ये दो भिन्न वस्तुएं हैं। अच्छे कामके प्रति आदर और बुरे कामके प्रति तिरस्कार होना ही चाहिये। भले-बुरे काम करनेवालोंके प्रति सदा आदर अथवा दया रखनी चाहिये। यह चीज समझनेमें सरल है, पर इसके अनुसार आचरण कम-से-कम होता है। इसी कारण इस संसारमें विष फैलता रहता है।

सत्यकी शोधके मूलमें ऐसी अहिंसा है। मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता रहता हूँ कि जब तक यह अहिंसा हाथमें नहीं आती, तब तक सत्य मिल ही नहीं सकता। व्यवस्था या पद्धतिके विरुद्ध झगड़ना शोभा देता है, पर व्यवस्थापकके विरुद्ध झगड़ा करना तो अपने विरुद्ध झगड़नेके समान है; क्योंकि हम सब एक ही कूंचीसे रचे गये हैं; एक ही ब्रह्माकी संतान हैं। व्यवस्थापकमें

अनन्त शक्तियां भरी हैं। व्यवस्थापकका अनादर या तिरस्कार करनेसे उन शक्तियोंका अनादर होता है, और वैसा होने पर व्यवस्थापकको और संसारको हानि पहुंचती है।

आत्म. २३७- ३८

८७. मेरे जीवनमें ऐसी घटनायें घटती ही रही हैं, जिनके कारण मैं अनेक धर्मावलम्बियोंके और अनेक जातियोंके गाढ़ परिचयमें आ सका हूँ। इन सब अनुभवोंके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मैंने अपने और पराये, देशी और विदेशी, गोरे और काले, हिन्दू और मुसलमान अथवा ईसाई, पारसी या यहूदीके बीच कोई भेद नहीं किया। मैं कह सकता हूँ कि मेरा हृदय ऐसा भेद कर ही न सका।

आत्म. २३८

८८. मैं संस्कृतका गहरा अभ्यासी नहीं हूँ। मैंने अनुवादोंके रूपमें ही वेद और उपनिषद् पढ़े हैं। इसलिए मैंने उनका जो अध्ययन किया है वह विद्वत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता। उनके विषयमें मेरा ज्ञान गहरा किसी तरह भी नहीं माना जा सकता। लेकिन मैंने उनका अध्ययन उसी प्रकार किया है, जैसा कि एक हिन्दूके नाते मुझे करना चाहिये; और मेरा यह दावा है कि मैंने उनकी सच्ची भावनाको ग्रहण कर लिया है। मैं २१ वर्षका हुआ तब तक मैंने दूसरे धर्मोंका भी अध्ययन कर लिया था।

एक समय मेरे जीवनमें ऐसा था जब मैं हिन्दू धर्म और ईसाई धर्मके बीच झूल रहा था। जब मैंने फिरसे मानसिक संतुलन प्राप्त किया तब मुझे लगा हिन्दू धर्मके जरिये ही मैं मोक्ष प्रौप्त कर सकता हूँ; और हिन्दू धर्ममें मेरी श्रद्धा अधिक गहरी और अधिक प्रबुद्ध हो गई।

लेकिन तब भी मेरा यह विश्वास था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं है; और अगर वह उसका हिस्सा हो तो ऐसा हिन्दू धर्म मेरे लिए नहीं है।

मो. क. गां.-२, ४९

८९. इतिहासके रूपमें आत्मकथा-मात्रकी अपूर्णता और उसकी कठिनाइयोंके बारेमें पहले मैंने जो कुछ पढ़ा था उसका अर्थ आज मैं अधिक समझता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि सत्यके प्रयोगोंकी इस आत्मकथामें जितना मुझे याद है उतना सब मैं नहीं दे रहा हूँ कौन कह सकता है कि सत्यका दर्शन करानेके लिए मुझे कितना देना चाहिये अथवा न्यायमंदिरमें एकांगी और अधूरे प्रमाणोंकी क्या कीमत कूती जायेगी? लिखे हुए प्रकरणों पर कोई फुरसतवाला आदमी मुझसे जिरह करने बैठे, तो वह इन प्रकरणों पर कितना अधिक प्रकाश लेगा? और यदि वह आलोचककी दृष्टिसे इनकी छानबीन करे, तो कैसी 'पोलें' प्रकट करके दुनियाको हंसायेगा और स्वयं फूल कर कुप्पा बनेगा।

आत्म. २४१

९०. 'इंडियन ओपीनियन'* के पहले महीनेके कामकाजसे ही मैं इस परिणाम पर पहुंच गया था कि समाचारपत्र केवल सेवाभावसे ही चलाने चाहिये। समाचारपत्र एक जबरदस्त शक्ति है, किन्तु जिस प्रकार निरंकुश पानीका प्रवाह गांवके गांव डुबो देता है और फसलको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कलमका निरंकुश प्रवाह भी नाशकी सृष्टि करता है। यदि ऐसा अंकुश बाहरसे आता है, तो वह निरंकुशतासे भी अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुश तो अन्दरका ही लाभदायक हो सकता है। यदि यह विचारधारा सही हो, तो दुनियाके कितने समाचारपत्र इस कसौटी पर खरे उतर सकते हैं? लेकिन निकम्मोंको बन्द कौन करे? कौन किसे निकम्मा समझे? उपयोगी और निकम्मे दोनों तरहके समाचारपत्र साथ-साथ ही चलते रहेंगे। उनमें से मनुष्यको अपना चुनाव करना होगा।

आत्म. २४८

---

* दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजी द्वारा संस्थापित साप्ताहिक पत्र।

९१. इससे ['अन्टु दिस लास्ट' से] पहले मैंने रस्किनकी एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी। विद्याध्ययनके समयमें पाठ्यपुस्तकोंके बाहरकी मेरी पढ़ाई लगभग नहींके बराबर मानी जायगी।

कर्मभूमिमें प्रवेश करनेके बाद समय बहुत कम बचता था। आज भी यही कहा जा सकता है। मेरा पुस्तकीय ज्ञान बहुत ही कम है। मैं मानता हूँ कि इस अनायास अथवा बरबस पाले गये संयमसे मुझे कोई हानि नहीं हुई। बल्कि जो थोड़ी पुस्तकें मैं पढ़ पाया हूँ, कहा जा सकता है कि उन्हें मैं ठीकसे हजम कर सका हूँ। न पुस्तकोंमें से जिसने मेरे जीवनमें तत्काल महत्त्वके रचनात्मक परिवर्तन कराये, वह 'अन्टु दिस लास्ट' ही कही जा सकती है। बादमें मैंने उसका गुजराती अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' के नामसे छपा।

मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्दर गहराईमें छिपी पड़ी थी, रस्किनके ग्रंथरत्नमें मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा। और, इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिये गये विचारों पर अमल कराया। जो मनुष्य हममें सोयी हुई उत्तम भावनाओंको जाग्रत करनेकी शक्ति रखता है वह कवि है। सब कवियोंका सब लोगों पर समान प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि सबके अन्दर सारी सद्भावनायें समान मात्रामें नहीं होतीं।

आत्म. २५९-६०

९२. घर बसाकर बैठनेके बाद कहीं स्थिर होकर रहना मेरे नसीबमें बदा ही नहीं था। जोहानिसबर्गमें मैं कुछ स्थिर-सा होने लगा था कि इसी बीच एक अनसोची घटना घटी। अखबारोंमें यह ख़बर पढ़नेको मिली कि नेटालमें 'जुलू-विद्रोह' हुआ है। जुलू लोगोंसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं थी। उन्होंने एक भी हिन्दुस्तानीका नुकसान नहीं किया था। 'विद्रोह' शब्दके औचित्यके विषयमें भी मुझे शंका थी। किन्तु उन दिनों मैं अंग्रेजी सल्तनतको संसारका कल्याण करनेवाली सल्तनत मानता था। मेरी वफादारी हार्दिक थी। मैं उस सल्तनतका क्षय नहीं चाहता था। अतएव बल-प्रयोग-सम्बन्धी नीति-अनीतिका विचार मुझे इस कार्यको करनेसे रोक नहीं सकता था। नेटाल पर संकट आने पर उसके पास रक्षाके लिए स्वयंसेवकोंकी सेना थी और संकटके समय उसमें कामके लायक सैनिक भरती भी हो जाते थे। मैंने पढ़ा कि स्वयंसेवकोंकी यह सेना इस 'विद्रोह' को दबानेके लिए रवाना हो चुकी है।

आत्म. २७३

९३. 'विद्रोह' के स्थान पर पहुंच कर मैंने देखा कि वहां विद्रोह-जैसी कोई बात नहीं थी। कोई विरोध करता हुआ भी नजर नहीं आता था। विद्रोह माननेका कारण यह था कि एक जुलू सरदारने जुलू लोगों पर लगाया गया नया कर न देनेकी उन्हें सलाह दी थी और करकी वसूलीके लिए गये हुए एक सार्जण्टको उसने मार डाला था। सो जो भी हो, मेरा हृदय तो जुलू लोगोंकी तरफ ही था और केन्द्र पर पहुंचनेके बाद जब हमारे हिस्से मुख्यतः जुलू घायलोंकी शुश्रूषा करनेका काम आया, तो मैं बहुत खुश हुआ। वहांके डॉक्टर अधिकारीने हमारा स्वागत किया । उसने कहा, "'गोरोंमें से कोई इन घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिए तैयार नहीं होता। मैं अकेला तो किस-किसकी सेवा करूं? इनके घाव सड़ रहे हैं। अब आप आये हैं, इसे मैं इन निर्दोष लोगों पर ईश्वरकी कृपा ही समझता हूँ।" यों कहकर उसने मुझे पट्टियां, जंतुनाशक पानी आदि सामान दिया और उन बीमारोंके पास ले गया। बीमार हमें देखकर खुश हो गये। गोरे सिपाही जालियोंमें से झांक-झांककर हमें घाव साफ करनेसे रोकनेका प्रयत्न करते, हमारे न मानने पर चिढ़ते और जुलूओंके बारेमें जिन गन्दे शब्दोंका उपयोग करते उनसे तो कानके कीड़े झड़ जाते थे।

आत्म. २७४

९४. कोई यह न माने कि जिन बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम हमें सौंपा गया था, वे किसी लड़ाईमें घायल हुए थे। उनमें से एक हिस्सा उन कैदियोंका था, जो शकमें पकड़े गये थे। जनरलने उन्हें कोड़ोंकी सजा दी थी। इन कोड़ोंकी मारसे जो घाव पैदा हुए थे, वे सार-संभालके अभावसे पक गये थे। दूसरा हिस्सा उन जुलूओंका था, जो मित्र माने जाते थे। इन मित्रोंको गोरे सिपाहियोंने भूलसे घायल किया था, यद्यपि उन्होंने मित्रता-सूचक चिह्न धारण कर रखे थे।

आत्म. २७४-७५

९५. 'जुलू-विद्रोह' में मुझे बहुतसे अनुभव हुए और बहुत-कुछ सोचने को मिला। बोअर-युद्धमें मुझे लड़ाईकी भयंकरता उतनी प्रतीत नहीं हुई थी जितनी यहां हुई। यहां लड़ाई नहीं बल्कि मनुष्यका शिकार हो रहा था। यह केवल मेरा ही नहीं बल्कि उन कई अंग्रेजोंका भी अनुभव था, जिनके साथ मेरी चर्चा होती रहती थी। सवेरे-सवेरे सेना गांवमें जाकर मानो पटाखे छोड़ती हो इस

प्रकार उसकी बन्दूकोंकी आवाज दूर रहनेवाले हम लोगोंके कानों पर पड़ती थी। इन आवाजोंको सुनना और इस वातावरणमें रहना मुझे मुश्किल मालूम पड़ा। लेकिन मैं सब कुछ कड़वे घूंटकी तरह पी गया और मेरे हिस्से जो काम आया सो तो केवल जुलू लोगोंकी सेवाका ही आया। मैं यह समझ गया कि अगर हम स्वयंसेवक-दलमें सम्मिलित ने हुए होते, तो दूसरा कोई यह सेवा न करता। इस विचारसे मैंने अपनी अन्तरात्माको शांत किया।

आत्म. २७५

९६. मन-वचन-कायासे ब्रह्मचर्यका पालन किस प्रकार हो, यह मेरी एक चिन्ता थी; और सत्याग्रहके युद्धेक लिए अधिक-से-अधिक समय किस तरह बच सके और अधिक शुद्धि किस प्रकार हो, यह दूसरी चिन्ता थी। इन चिन्ताओंने मुझे आहारमें अधिक संयम और अधिक परिवर्तन करनेके लिए प्रेरित किया; और पहले जो परिवर्तन मैं मुख्यतः आरोग्यकी दृष्टिसे करता था, वे अब धार्मिक दृष्टिसे होने लगे।

इसमें उपवास और अल्पाहारने अधिक स्थान लिया। जिस मनुष्यमें विषय-वासना रहती है, उसमें जीभके स्वाद भी अच्छी मात्रामें होते हैं। मेरी भी यही स्थिति थी। जननेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय पर काबू पानेकी कोशिशमें मुझे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, और आज भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैंने दोनों पर पूरी विजय प्राप्त कर ली है। मैंने अपने-आपको अत्याहारी माना है। मित्रोंने जिसे मेरा संयम माना है, उसे मैंने स्वयं कभी संयम माना ही नहीं। मैं जितना अंकुश रखना सीखा हूँ उतना भी यदि न रख सका होता, तो मैं पशुसे भी नीचे गिर जाता और कभीका नष्ट हो जाता। कहा जा सकता है कि अपनी त्रुटियोंका मुझे ठीक दर्शन हो जानेसे मैंने उन्हें दूर करनेके लिए घोर प्रयत्न किये हैं और फलतः मैं इतने वर्षों तक इस शरीरको टिका सका हूँ और इससे कुछ काम ले सका हूँ।

आत्म. २७९

९७. मैंने फलाहार आरम्भ किया। परन्तु संयमकी दृष्टिसे फलाहार और अन्नाहारके बीच बहुत भेद नहीं देख सका। जिसे हम अनाजके रूपमें पहचानते हैं और उसमें से जो रस हम प्राप्त करते

हैं, वे रस हमें फलाहारसे भी मिल जाते हैं; और मैंने देखा है कि आदत पड़ जाने पर तो उसमें से अधिक रस प्राप्त होता है। अतएव इन (एकादशी आदि) तिथियोंके दिन मैं निराहार उपवासको अथवा एकाशनको अधिक महत्त्व देने लगा। इसके सिवा, प्रायश्चित्त आदिका कोई निमित्त मिल जाता, तो मैं उस निमित्तसे भी एक बारका उपवास कर डालता था।

इसमें से मैंने यह भी अनुभव किया कि शरीरके अधिक निर्मल होनेसे स्वाद बढ़ गया, भूख अधिक खुल गई। और मैंने देखा कि उपवास आदि जिस हद तक संयमके साधन हैं; उसी हद तक वे भोगके साधन भी बन सकते हैं। इस ज्ञानके बाद इसके समर्थनमें इसी प्रकारके कितने ही अनुभव मुझे और दूसरोंको हुए हैं। यद्यपि मुझे शरीरको अधिक अच्छा और कसा हुआ बनाना था, तथापि अब मेरा मुख्य हेतु तो संयम सिद्ध करना - स्वादको जीतना ही था। अतएव मैं आहारकी वस्तुओंमें और उनकी मात्रामें फेरबदल करने लगा। किन्तु रस तो पीछा पकड़े हुए थे ही। मैं किसी वस्तुको छोड़ता और उसके बदलेमें दूसरी वस्तु लेता, तो उस दूसरी वस्तुमें से बिलकुल नये और अधिक रसोंका निर्माण हो जाता !

आत्म. २७९-८०

९८. किन्तु अनुभवने मुझे सिखाया कि ऐसे स्वादोंका आनन्द लेना भी अनुचित था। मतलब यह कि मनुष्यको स्वादके लिए नहीं, बल्कि शरीरके निर्वाहके लिए ही खाना चाहिए। जब प्रत्येक इन्द्रिय केवल शरीरके लिए और शरीरके द्वारा आत्माके दर्शनके लिए ही काम करती है, तब उसके रस शून्यवत् हो जाते हैं और तभी यह कहा जा सकता है कि वह स्वाभाविक रूपसे बरतती है।

ऐसी स्वाभाविकता प्राप्त करनेके लिए जितने प्रयोग किये जायें उतने कम ही हैं; और ऐसा करते हुए अनेक शरीरोंकी आहुति देनी पड़े, तो उसे भी हमें तुच्छ समझना चाहिए। आज तो उलटी धारा बह रही है। नश्वर शरीरको सजानेके लिए, उसकी उमर बढ़ानेके लिए, हम अनेक प्राणियोंकी बलि देते हैं, फिर भी उससे शरीर और आत्मा दोनोंका हनन होता है।

आत्म. २८०-८१

९९. मुझे जेलका पहला अनुभव सन् १९०८ में हुआ। उस समय मैंने देखा कि जेलमें कैदियोंसे जो कुछ नियम पलवाये जाते हैं, संयमी अथवा ब्रह्मचारीको उनका पालन स्वेच्छापूर्वक करना चाहिये। जैसे, कैदियोंको सूयस्तिसे पहले पांच बजे तक खाना खा लेना होता है। उन्हें – हिन्दुस्तानी और हबशी कैदियोंको – चाय या कॉफी नहीं दी जाती। नमक खाना हो तो अलगसे लेना होता है। स्वादके लिए तो कुछ खाया ही नहीं जा सकता।

आत्म. २८४

१००. जेलमें बड़ी मेहनतके बाद हम आखिर जरूरी परिवर्तन करा सके थे। पर केवल संयमकी दृष्टिसे देखें, तो दोनों प्रतिबन्ध अच्छे ही थे। ऐसा प्रतिबन्ध जब जबरदस्ती लगाया जाता है तो वह सफल नहीं होता; पर स्वेच्छासे पालन करने पर ऐसा प्रतिबन्ध बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जेलसे छूटनेके बाद मैंने ये परिवर्तन भोजनमें तुरन्त किये। भरसक चाय पीना बन्द किया और शामको जल्दी खानेकी आदत डाली, जो आज स्वाभाविक हो गया है।

आत्म. २८५

१०१. इन्द्रिय-दमनके हेतुसे किये गये उपवाससे ही विषयोंको संयत करनेका परिणाम निकल सकता है। कुछ मित्रोंका यह अनुभव भी है कि उपवासकी समाप्ति पर विषयेच्छा और स्वाद तीव्र हो जाते हैं। मतलब यह कि उपवासके दिनोंमें विषयको संयत करने और स्वादको जीतनेकी सतत भावना रहने पर ही उसका शुभ परिणाम निकल सकता है। यह मानना निरा भ्रम है कि बिना किसी हेतुके और बेमन किये जानेवाले शारीरिक उपवासका स्वतंत्र परिणाम विषय-वासनाको संयत करनेमें आयेगा।

आत्म. २९१

१०२. तात्पर्य यह कि संयमीके मार्गमें उपवास आदि एक साधनके रूपमें हैं, किन्तु ये ही सब कुछ नहीं हैं। और यदि शरीरके उपवासके साथ मनका उपवास न हो, तो उसकी परिणति दंभमें होती है और वह हानिकारक सिद्ध होता है।

आत्म. २९१

१०३. टॉल्स्टॉय आश्रममें* शुरूसे ही यह रिवाज डाला गया था कि जिस कामको हम शिक्षक न करें, वह बालकोंसे न कराया जाय; और बालक जिस काममें लगे हों उसमें उनके साथ उसी कामको करनेवाला एक शिक्षक हमेशा रहे। इसलिए बालकोंने जो कुछ सीखा, उमंगके साथ सीखा।

आत्म. २९३

---

* टॉल्स्टॉय फार्म और फीनिक्स कॉलोनी दोनों आश्रम दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजी द्वारा स्थापित किये गये थे। वहां वे और उनके सहयोगी आत्मानुशासन और सेवाका जीवन बिताते थे।

१०४. पाठ्यपुस्तकोंकी जो पुकार जब-तब सुनायी पड़ती है, उसकी आवश्यकता मुझे कभी मालूम नहीं हुई। मुझे याद नहीं पड़ता कि जो पुस्तकें हमारे पास थीं, उनका भी बहुत उपयोग किया गया हो । हरएक बालकको बहुतसी पुस्तकें दिलानेकी मैंने जरूरत नहीं समझी । मेरा ख़याल है कि शिक्षक ही विद्यार्थीकी पाठ्यपुस्तक है। शिक्षकोंने पुस्तकोंकी मददसे मुझे जो सिखाया था, वह मुझे बहुत ही कम याद रहा है। पर उन्होंने अपने मुंहसे जो सिखाया था, उसका स्मरण आज भी बना हुआ है।

बालक आंखोंसे जितना ग्रहण करते हैं, उसकी अपेक्षा कानोंसे सुनी हुई बातको वे थोड़े परिश्रमसे और बहुत अधिक मात्रामें ग्रहण कर सकते हैं। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं बालकोंको एक भी पुस्तक पूरी पढ़ा पाया था। पर अनेकानेक पुस्तकोमें से जितना कुछ मैं पचा पाया था, उसे मैंने अपनी भाषामें उनके सामने रखा था। मैं मानता हूँ कि वह उन्हें आज भी याद होगा। पढ़ाया हुआ याद रखनेमें उन्हें कष्ट होता था, जब कि मेरी कही हुई बातको वे उसी समय मुझे फिर सुना देते थे। पढ़नेमें उनका जी ऊबता था। जब मैं थकावटके कारण या अन्य किसी कारणसे मन्द और निरस न होता, तब वे मेरी बात रसपूर्वक और ध्यानपूर्वक सुनते थे। उनके पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर देनेमें मुझे उनकी ग्रहण-शक्तिका अन्दाजा हो जाता था।

आत्म. २९५

१०५. शरीरकी शिक्षा जिस प्रकार शारीरिक कसरत द्वारा दी जाती है और बुद्धिकी शिक्षा बौद्धिक कसरत द्वारा, उसी प्रकार आत्माकी शिक्षा आत्मिक कसरत द्वारा ही दी जा सकती है। आत्माकी कसरत शिक्षकके आचरण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव युवक हाजिर हों चाहे न हों, शिक्षकको हमेशा ही सावधान रहना चाहिये।

आत्म. २९६

१०६. मैं स्वयं झूठ बोलूं और अपने शिष्योंको सच्चा बनानेका प्रयत्न करूं, तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्योंको वीरता नहीं सीखा सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्योंको संयम किस प्रकार सिखायेगा? मैंने देखा कि मुझे अपने पास रहनेवाले युवकों और युवतियोंके सम्मुख पदार्थ-पाठ-सा बनकर रहना चाहिये। इस कारण मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बने। मैं यह समझा कि मुझे अपने लिए नहीं, बल्कि उनके लिए अच्छा बनना और रहना चाहिये। अतएव कहा जा सकता है कि टॉल्स्टॉय आश्रमका मेरा अधिकतर संयम इन युवकों और युवतियोंकी बदौलत था।

आश्रममें एक युवक ऊधम मचाता था, झूठ बोलता था, किसीसे दबता नहीं था और दूसरोंके साथ लड़ता-झगड़ता रहता था। एक दिन उसने बहुत ही ऊधम मचाया। मैं घबरा उठा। मैं विद्यार्थियोंको कभी सजा नहीं देता था। पर इस बार मुझे क्रोध हो आया। मैं उसके पास पहुंचा। समझाने पर वह किसी प्रकार समझता ही न था। उसने मुझे धोखा देनेका प्रयत्न किया। मैंने अपने पास पड़ा हुआ रूल उठाकर उसकी बांह पर दे मारा। मारते समय मैं कांप रहा था। इसे उसने देख लिया होगा। मेरी ओरसे ऐसा अनुभव किसी विद्यार्थीको इससे पहले नहीं हुआ था। विद्यार्थी रो पड़ा। उसने मुझसे माफी मांगी। उसे डंडा लगा और चोट पहुंची, इससे वह नहीं रोया था। अगर वह मेरा मुकाबला करना चाहता, तो मुझसे निबट सकनेकी शक्ति उसमें थी। उसकी उमर कोई सतरह सालकी रही होगी। उसका शरीर सुगठित था। परन्तु मेरे रूलमें उसे मेरे दु:खका दर्शन हो गया। इस घटनाके बाद उसने फिर कभी मेरा सामना नहीं किया। लेकिन उसे रूल मारनेका पछतावा मेरे दिलमें आज तक बना हुआ है। मुझे भय है कि उसे मारकर मैंने अपनी आत्माका नहीं, बल्कि अपनी पशुताका ही दर्शन कराया था।

बालकोंको मारपीट कर पढ़ानेका मैं हमेशा विरोधी रहा हूँ। मुझे ऐसी एक ही घटना याद है कि जब मैंने अपने लड़कोंमें से एकको पीटा था। रूलसे (उस युवकको) पीटनेमें मैंने उचित कार्य किया या नहीं, इसका निर्णय मैं आज तक कर नहीं सका हूँ। इस दण्डके औचित्यके विषयमें मुझे शंका है, क्योंकि उसमें क्रोध भरा था और दण्ड देने की भावना थी। यदि उसमें केवल मेरे दुःखका ही प्रदर्शन होता तब तो मैं उस दण्डको उचित समझता । पर उसमें विद्यमान भावना मिश्र भावना थी।

आत्म. २९७

१०७. उसके बाद युवकों द्वारा ऐसे ही दोष हुए, लेकिन मैंने फिर कभी दण्डनीतिका उपयोग नहीं किया। इस प्रकार लड़के-लड़कियोंको आत्मिक ज्ञान देनेके प्रयत्नमें मैं स्वयं आत्माके गुणको अधिक समझने लगा।

आत्म. २९७

१०८. उन दिनों मेरा जोहानिसबर्ग और फीनिक्स आना-जाना होता रहता था। एक बार मैं जोहानिसबर्गमें था तब मेरे पास दो व्यक्तियोंके भयंकर नैतिक पतनके समाचार पहुंचे। सत्याग्रहकी महान लड़ाईमें कहीं भी निष्फलता जैसी दिखायी पड़ती, तो उससे मुझे कभी कोई आघात नहीं पहुंचता था। पर इस घटनाने मुझ पर वज्र-सा प्रहार किया। मैं तिलमिला उठा। मैंने उसी दिन फीनिक्सकी गाड़ी पकड़ी।

आत्म. २९९

१०९. रास्तेमें मैंने अपना धर्म स्पष्ट समझ लिया, अथवा यों कहिये कि समझ लिया-सा मानकर मैंने अनुभव किया कि अपनी निगरानीमें रहनेवालोंके पतनके लिए अभिभावक अथवा शिक्षक न्यूनाधिक अंशमें जरूर जिम्मेदार है। इस घटनामें मुझे अपनी जिम्मेदारी स्पष्ट जान पड़ी। मेरी पत्नीने मुझे सावधान तो कर ही दिया था, किन्तु स्वभावसे विश्वासी होनेके कारण मैंने पत्नीकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया था। साथ ही, मुझे यह भी लगा कि इस पतनके लिए मैं प्रायश्चित्त करूंगा तो ही ये पतित मेरा दुःख समझ सकेंगे और उससे उन्हें अपने दोषका भान होगा तथा

उसकी गंभीरताका कुछ अंदाज बैठेगा। अतएव मैंने सात दिनके उपवास और साढ़े चार महीनेके एकाशनका व्रत लिया।

आत्म. २९९-३००

११०. यद्यपि मेरे उपवाससे सबको कष्ट तो हुआ, लेकिन उसके कारण वातावरण शुद्ध बना। सबको पाप करनेकी भयंकरताका बोध हुआ और विद्यार्थियों तथा विद्यार्थिनियोंके और मेरे बीचका सम्बन्ध अधिक दृढ़ और सरल बन गया।

आत्म. ३००

१११. वकालतके धंधेमें मैंने कभी असत्यका प्रयोग नहीं किया। और मेरी वकालतका बड़ा भाग केवल सेवाके लिए ही अर्पित था और उसके लिए जेबखर्चके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं लेता था। कभी-कभी जेबखर्च भी अपनी ओरसे कर देता था ।...विद्यार्थी-अवस्थामें भी मैं यह सुना करता था कि वकालतका धन्धा झूठ बोले बिना चल ही नहीं सकता । झूठ बोलकर मैं न तो कोई पद लेना चाहता था और न पैसा कमाना चाहता था। इसलिए इन बातोंका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। दक्षिण अफ्रीकामें इसकी परीक्षा तो बहुत बार हो चुकी थी। मैं जानता था कि प्रतिपक्षीके साक्षियोंको सिखाया-पढ़ाया गया है, और यदि मैं मुवक्किलको अथवा साक्षीको तनिक भी झूठ बोलनेके लिए प्रोत्साहित कर दूं, तो मुवक्किलके केसमें कामयाबी मिल सकती है। किन्तु मैंने हमेशा इस लालचको छोड़ा है। मुझे ऐसी केवल एक ही घटना याद है कि जब मुवक्किलका मुकदमा जीतनेके बाद मुझे यह शक हुआ कि मुवक्किलने मुझे धोखा दिया है। मेरे दिलमें हमेशा यही ख़याल बना रहता था कि अगर मुवक्किलका केस सच्चा हो तो उसमें जीत मिले और झूठ हो तो हार हो। मुझे याद नहीं पड़ता कि फीस लेते समय मैंने कभी हार-जीतके आधार पर फीसकी दरें तय की हों। मुवक्किल हारे या जीते, मैं तो हमेशा अपना मेहनताना ही मांगता था और जीतने पर भी उसीकी आशा रखता था।

मुवक्किलको मैं शुरूसे ही कह देता था: "मामला झूठा हो तो मेरे पास मत आना। साक्षीको सिखाने-पढ़ानेका काम करानेकी मुझसे कोई आशा न रखना।" आखिर मेरी साख तो यही कायम

हुई थी कि झूठे मुकदमे मेरे पास आते ही नहीं। मेरे कुछ ऐसे मुवक्किल भी थे, जो अपने सच्चे मामले तो मेरे पास लाते थे और जिनमें थोड़ी भी खोटखराबी होती, उन्हें दूसरे वकीलोंके पास ले जाते थे।

आत्म. ३१६-१७

११२. वकालत करते हुए मैंने एक ऐसी आदत भी डाली थी कि अपना अज्ञान न मैं मुवक्किलोंसे छिपाता था और न वकीलोंसे। जहां-जहां मुझे कुछ सूझ न पड़ता, वहां-वहां मैं मुवक्किलसे दूसरे वकीलके पास जानेको कहता; अथवा वह मुझे ही वकील करता तो मैं उससे कहता कि अपनेसे अधिक अनुभवी वकीलकी सलाह लेकर मैं उसका काम करूंगा। अपने इस शुद्ध व्यवहारके कारण मैं मुवक्किलोंका अखूट प्रेम और विश्वास संपादन कर सका था। बड़े वकीलके पास जानेकी जो फीस देनी पड़ती, उसके पैसे भी वे प्रसन्नतापूर्वक दे देते थे। इस विश्वास और प्रेमका पूरा-पूरा लाभ मुझे अपने सार्वजनिक काममें मिला।

आत्म. ३२०

११३. जब सन् १९१४ में सत्याग्रहकी लड़ाई समाप्त हुई, तो गोखलेकी इच्छानुसार मुझे इंग्लैंड होते हुए हिन्दुस्तान पहुंचना था।...४ अगस्तको युद्ध घोषित किया गया। ६ अगस्तको हम विलायत पहुंचे।

आत्म. ३०१-०३

११४. मुझे लगा कि विलायतमें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंको इस लड़ाईमें अपना हिस्सा अदा करना चाहिये। अंग्रेज विद्यार्थियोंने लड़ाईमें सेवा करनेका अपना निश्चय घोषित किया था। हिन्दुस्तानी इससे कम नहीं कर सकते थे। इन दलीलोंके विरोधमें बहुत दलीलें दी गयीं। यह कहा गया कि हमारी और अंग्रेजोंकी स्थितिके बीच हाथी-घोड़ेका अंतर है। एक गुलाम है, दूसरे सरदार। ऐसी स्थितमें सरदारके संकटमें गुलाम स्वेच्छासे सरदारकी सहायता किस प्रकार कर सकता है? क्या गुलामीसे छुटकारा चाहनेवाले गुलामका यह धर्म नहीं है कि वह सरदारके संकटका उपयोग अपनी मुक्तिके लिए करे? पर उस समय यह दलील मेरे गले कैसे उतरती? यद्यपि मैं दोनोंकी स्थितिके

भेदको समझ सका था, फिर भी मुझे हमारी स्थिति बिलकुल गुलामीकी नहीं लगती थी। मेरा तो यह ख़याल था कि अंग्रेजोंकी शासन-पद्धतिमें जो दोष है, उससे अधिक दोष अंग्रेज अधिकारियोंमें है। उस दोषको हम प्रेमसे दूर कर सकते हैं। यदि हम अंग्रेजोंके द्वारा और उनकी सहायतासे अपनी स्थिति सुधारना चाहते हैं, तो उनके संकटके समय उनकी सहायता करके हमें अपनी स्थिति सुधारना चाहिये। उनकी शासन-पद्धति दोषपूर्ण होते हुए भी मुझे उस समय वह उतनी असह्य नहीं मालूम होती थी जितनी आज मालूम होती है। किन्तु जिस प्रकार आज उस पद्धति परसे मेरा विश्वास उठ गया है और इस कारण मैं आज अंग्रेजी राज्यकी मदद नहीं करता, उसी प्रकार जिनका विश्वास अंग्रेजोंकी शासन-पद्धति परसे ही नहीं, बल्कि अंग्रेज अधिकारियों परसे भी उठ चुका था, वे क्योंकर उनकी मदद करनेको तैयार होते?

आत्म. ३०३-०४

११५. मैंने अंग्रेजोंकी इस आपत्तिके समय अपनी मांग पेश करना ठीक न समझा और लड़ाईके समय अधिकारोंकी मांगको मुलतवी रखनेके संयममें सभ्यता और दूरदृष्टिका दर्शन किया। इसलिए मैं अपनी सलाह पर दृढ़ रहा, और मैंने लोगोंसे कहा कि जिन्हें स्वयंसेवकोंकी भरतीमें नाम लिखाने हों वे लिखा दें।

आत्म. ३०४

११६. युद्धकी अनीतिको हम सब स्वीकार करते थे। जब मैं अपने ऊपर हमला करनेवाले पर मुकदमा चलानेको तैयार न था, तो दो राज्योंके बीच छिड़ी हुई लड़ाइमें, जिसके गुण-दोषका मुझे पता न था, मैं किस प्रकार सम्मिलित हो सकता था? मित्र जानते थे कि मैंने बोअर-युद्धमें हाथ बटाया था, फिर भी उन्होंने मान लिया था कि उसके बाद मेरे विचारोंमें परिवर्तन हुआ होगा।

असलमें जिस विचारधाराके वश होकर मैं बोअर-युद्धमें सम्मिलित हुआ था, उसीका उपयोग मैंने इस बार भी किया था। मैं इस बातको भलीभांति समझता था कि युद्धमें सम्मिलित होनेका अहिंसाके साथ कोई मेल नहीं बैठ सकता। किन्तु कर्तव्यका बोध हमेशा दीपककी भांति स्पष्ट नहीं होता। सत्यके पुजारीको बहुत बार अंधेरेमें टटोलना पडता है।

११७. दक्षिण अफ्रीकामें घायलोंकी मदद करनेके लिए और हिन्दुस्तानमें लड़ाईके मोर्चे पर जानेके लिए आदमियोंकी भरती करके मैंने लड़ाईके उद्देश्यकी मदद नहीं की, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यकी ही मदद की थी। उस समय मेरा यह विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य आखिर हमारे लिए हितकर साबित होगा। युद्धके प्रति मुझे जितना तिरस्कार आज है, उतना ही तिरस्कार उस समय भी था। जिस प्रकार आज मैं बन्दूक नहीं उठा सकता, उसी प्रकार उस समय भी मैं बन्दूक नहीं उठा सकता था। लेकिन मनुष्यका जीवन कोई सीधी लकीर तो है नहीं। वह तो कर्तव्योंका एक समूह है। और एक कर्तव्य अक्सर दूसरे कर्तव्यके विरुद्ध भी होता है और मनुष्यको दोनोंमें से एक ही कर्तव्यको पसंद करनेके लिए मजबूर होना पड़ता है। एक नागरिककी हैसियतसे, जो न तो उस युद्धके ख़िलाफ़ किसी आंदोलनका नेतृत्व करनेवाला सुधारक था और न आज ही है, मुझे उन लोगोंको सलाह देनी पड़ी और रास्ता बताना पड़ा था, जो युद्धमें तो विश्वास रखते थे, लेकिन जो अपनी कायरताके कारण, हलके हेतुओंके कारण, या ब्रिटिश सरकारके प्रति क्रोध होनेके कारण सेनामें भरती होनेसे बचते थे। मैंने उन्हें यह सलाह देनेमें संकोच नहीं किया कि जब तक उन्हें युद्ध-नीतिमें विश्वास है और वे ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति वफादार होनेका दावा करते हैं, तब तक उनका यह फर्ज है कि वे सेनामें भरती होकर ब्रिटिश साम्राज्यकी सहायता करें ।...यद्यपि मैं तलवारका जवाब तलवारसे देनेकी नीतिको नहीं मानता हूँ, फिर भी चार साल पहले मैंने बेतियाके निकटवर्ती ग्रामके लोगोंसे यह कहनेमें संकोच अनुभव नहीं किया कि आपने, जो अहिंसाके बारेमें कुछ नहीं जानते, अपने माल-असबाब और स्त्रियोंके सम्मानकी रक्षा हथियारोंसे न करके अपनी कायरताका ही परिचय दिया था।...मैंने हिन्दुओंको अभी हाल ही यह कहनेमें हिचकिचाहट नहीं दिखाई कि यदि उन्हें अहिंसामें संपूर्ण श्रद्धा नहीं है और वे उस पर अमल नहीं कर सकें, तो उन्हें हथियारोंका उपयोग करके अपनी स्त्रियोंको भगानेवालोंका सामना करना चाहिये और उनके शीलकी रक्षा करनी चाहिये; अगर वे ऐसा नहीं करेंगे, तो वे अपने धर्म और मानवताके प्रति अपराधी सिद्ध होंगे। और यह सारी सलाह और मेरा पहलेका आचरण मेरे शुद्ध अहिंसाधर्मके साथ केवल सुसम्बद्ध ही नहीं मालूम होता, लेकिन उसका सीधा परिणाम है। इस

महान सिद्धान्तको जबानसे कह देना आसान है, लेकिन उसको समझकर स्पर्धा, दुःख और विकारोंसे भरी हुई इस दुनियामें उसके अनुसार व्यवहार करना बड़ा कठिन काम है। इस कठिनाईको मैं दिनोंदिन अधिक अनुभव कर रहा हूँ। लेकिन साथ ही मेरी यह श्रद्धा भी दिनोंदिन अधिक गहरी होती जा रही है कि अहिंसाके बिना जीवन जीने योग्य नहीं रहेगा।

हिं. न. ५-११-१९२५, ९६

११८. सिर्फ अहिंसाकी ही कसौटी पर कसनेसे मेरे आचरणका बचाव नहीं किया जा सकता। हिंसाकी दृष्टिसे शस्त्र धारण कर मारनेवालोंमें और निःशस्त्र रहकर घायलोंकी सेवा करनेवालोंमें मैं कोई फर्क नहीं देखता। दोनों ही लड़ाईमें शामिल होते हैं और उसीके उद्देश्यको आगे बढ़ाते हैं। दोनों ही लड़ाईके अपराधके दोषी हैं। मगर इतने वर्षों तक आत्म-निरीक्षण करनेके बाद भी मुझे यही लगता है कि मैं जिस परिस्थितिमें था उसमें मेरे लिए वही एक मार्ग अपनाना लाजिमी था, जो मैंने बोअर-युद्धके समय, यूरोपके महा-युद्धेके समय और 'जुलू-विद्रोह' के समय सन् १९०६ में अपनाया था।

जीवनका संचालन अनेक शक्तियोंके द्वारा होता है। यदि कोई ऐसा सर्व-सामान्य नियम होता, जिसका प्रयोग करते ही हर प्रसंगमें कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करनेके लिए क्षणमात्रके लिए भी सोचना नहीं पड़ता, तो जीवनकी नैयाको खेना सरल हो जाता। लेकिन मुझे तो ऐसा एक भी कार्य याद नहीं आता, जिसका निश्चय इतनी आसानीसे हो सका हो।

मैं स्वयं युद्धका विरोधी हूँ। इसलिए मैंने अवसर मिलने पर भी कभी मारक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करना नहीं सीखा है। शायद इसीलिए मैं प्रत्यक्ष मानव-संहारसे बच सका हूँ। मगर जब तक मैं पशुबल पर स्थापित सरकारके अधीन रहता हूँ और उसकी पैदा की हुई सुविधाओं तथा अधिकारोंका स्वेच्छासे उपभोग करता हूँ, तब तक वह सरकार कोई लड़ाई लड़े तो उसमें यथाशक्ति उसकी मदद करना मेरे लिए अनिवार्य हो जाता है। लेकिन जब मैं उस सरकारके साथ असहयोग कर दूं और उसकी दी हुई सुविधाओंका यथाशक्ति त्याग कर दूं तब उसकी मदद करना मेरे लिए अनिवार्य नहीं रहता। एक उदाहरण लीजिये। मैं एक संस्थाका सदस्य हूँ। उस संस्थाके

पास खेतीकी कुछ जमीन है। यह आशंका है कि उसकी फसलको बंदर नुकसान पहुंचायेंगे। मैं मानता हूँ कि सभी प्राणियोंका जीवन पवित्र है, इसलिए बंदरोंको किसी तरहकी चोट पहुंचानेको मैं अहिंसाका भंग मानता हूँ। लेकिन फसलको बचानेके खातिर बंदरों पर हमला करनेके लिए किसीको प्रोत्साहित करनेमें मैं नहीं झिझकता। मैं इस बुराईसे बचना चाहूंगा। उस संस्थाको छोड़कर या तोड़कर मैं इस बुराईसे बच सकता हूँ। मगर मैं ऐसा नहीं करता, क्योंकि मुझे इसकी आशा नहीं है कि यहांसे हटने पर मुझे कोई ऐसा समाज मिल सकेगा, जहां खेती नहीं होती हो और उसके फलस्वरूप किसी-न-किसी प्रकारके प्राणियोंका कभी नाश न होता हो। इसलिए इस आशामें कि किसी-न-किसी दिन इस बुराईसे बचनेका रास्ता मुझे मिल जायेगा, मैं नम्रता और प्रायश्चित्तकी भावनाके साथ डरते हुए और कांपते हुए बंदरोंको चोट पहुंचानेके काममें शामिल होता हूँ।

इसी तरह मैं तीनों युद्धोंमे शामिल हुआ था। जिस समाजका मैं एक सदस्य हूँ, उससे अपना संबंध मैं तोड़ नहीं सकता था। तोड़ना मेरा पागलपन होता। इन तीनों अवसरों पर ब्रिटिश सरकारके साथ असहयोग करनेका मेरा कोई विचार नहीं था। आज उस सरकारके संबंधमें मेरी स्थिति बिलकुल ही बदल गई है, इसलिए उसके युद्धोंमें मुझे खुशीसे शामिल नहीं होना चाहिये; और यदि शस्त्र धारण करने या और किसी तरहसे युद्धकार्यमें शामिल होनेके लिए मुझे बाध्य किया जाय, तो मुझे जेल जानेका या फांसीके तख्ते पर चढ़नेका खतरा उठानेके लिए भी तैयार रहना चाहिए।

लेकिन इससे प्रश्न अभी भी हल नहीं होता। यदि हिन्दुस्तानमें राष्ट्रीय सरकार हो तो उसके किसी युद्धमें शामिल न होते हुए भी ऐसे अवसरकी मैं कल्पना कर सकता हूँ, जब सैनिक शिक्षण पानेकी इच्छा रखनेवालोंको वह शिक्षण देनेके पक्षमें मत देना मेरा कर्तव्य हो जाय। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अहिंसामें जिस हद तक मेरा विश्वास है, उस हद तक इस राष्ट्रके सभी लोगोंका नहीं है। किसी भी समाज या आदमीको जबरन् अहिंसक नहीं बनाया जा सकता।

अहिंसा अत्यंत गूढ़ ढंगसे अपना काम करती है। अहिंसाकी दृष्टिसे किसी आदमीके कामोंकी परीक्षा करना कठिन हो जाता है। उसी तरह अनेक मौकों पर उसके काम ऊपरसे

हिंसापूर्ण लग सकते हैं, जब कि वह अहिंसाके शुद्धसे शुद्ध अर्थमें अहिंसक रहा हो और आगे चलकर यह साबित भी हो। इसलिए उपर्युक्त अवसरों पर किये गये अपने व्यवहारके बारेमें मैं सिर्फ इतना ही दावा कर सकता हूँ कि उसके मूलमें अहिंसा ही काम कर रही थी। उसमें किसी शुद्ध राष्ट्रीय या दूसरे हितका विचार नहीं था। मैं यह नहीं मानता कि किसी एक हितका बलिदान देकर राष्ट्रीय हित या किसी दूसरे हितकी रक्षा करनी चाहिये।

मुझे अपनी यह दलील अब और आगे नहीं बढ़ानी चाहिये। अपने विचारोंको पूरी तरह प्रकट करनेके लिए भाषा आख़िर एक अधूरा साधन भर है। मेरे लिए अहिंसा महज एक दार्शनिक सिद्धांत ही नहीं है। यह तो मेरे जीवनका नियम है; इसके बिना मैं जी ही नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि बहुत बार मैं इसके पालनमें असफल रहता हूँ – कभी कभी जानमें, बहुत बार अनजानमें। अहिंसा बुद्धिका विषय नहीं, बल्कि हृदयका विषय है। सच्चा मार्गदर्शन तो परमात्माकी सतत प्रार्थनासे, अतिशय नम्रतासे, आत्मत्यागसे और हमेशा अपना बलिदान देनेके लिए तैयार रहनेसे मिलता है। अहिंसाकी साधनाके लिए ऊंचेसे ऊंचे प्रकारकी निर्भगता और साहसकी आवश्यकता है। मैं अपनी निर्बलताओंको जानता हूँ और मुझे उनके लिए दुःख है।

लेकिन मेरे भीतरकी ज्योति स्थिर और स्पष्ट है। अहिंसा और सत्यको छोड़ कर हमारे उद्धारका दूसरा कोई रास्ता नहीं है। मैं जानता हूँ कि युद्ध एक तरहकी बुराई है, और शुद्ध बुराई है। मैं यह भी जानता हूँ कि एक दिन इसका अन्त होना ही है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि खून-खराबी या धोखेबाजीसे ली गई स्वाधीनता वास्तवमें स्वाधीनता ही नहीं है। मेरे किसी कामसे लोगोंके मनमें यह शंका पैदा हो कि मैंने अहिंसाके सिद्धांतके साथ समझौता किया है या मैं कभी किसी भी रूपमें असत्य अथवा हिंसाका हामी समझा जाऊं, इसके बजाय मैं चाहूंगा कि मेरे सारे ही कार्य असमर्थनीय मान लिये जायं! हिंसा और असत्य नहीं, बल्कि अहिंसा और सत्य ही हमारे जीवनके नियम हैं।

सिलेक्शन्स. १६८-७०

११९. अपनी मर्यादाओंका मुझे स्पष्ट भान है। यही भान – यही ज्ञान मेरी एकमात्र शक्ति है। मैं अपने जीवनमें जो कुछ भी कर पाया हूँ, वह सब अन्य किसी वस्तुकी अपेक्षा अपनी मर्यादाओंके मेरे भानके कारण ही हो सका है।

सिलेक्शन्स. २१४

१२०. मेरे अपने जीवनमें मेरे नामसे फैलायी जानेवाली गलतफहमियोंका मैं आदी हो गया हूँ। यह तो सारे सार्वजनिक कार्यकर्ताओंके भाग्यमें ही लिखा होता है। उनकी त्वचा तो बड़ी सख्त होनी चाहिये। यदि सभी गलतफहमियोंका उत्तर दिया जाये और उनका स्पष्टीकरण किया जाये, तो उससे जीवन भाररूप हो जाये। मैंने तो इसे जीवनका नियम ही बना लिया है कि जब तक उद्देश्यकी रक्षाके लिए आवश्यक न हो तब तक किसी भी गलतफहमीका स्पष्टीकरण न किया जाय। इस नियमके कारण मेरा बहुतसा समय बच गया है और मैं अनेक चिंताओंसे मुक्त रहा हूँ।

हिं. न. २७-५-१९२६, ३२५

१२१. मैं अगर किसी सद्गुणका दावा करता हूँ, तो वह मेरी सत्यनिष्ठा और अहिंसा-परायणता ही है। मैं अपनेमें किसी दैवी शक्ति होनेका दावा नहीं करता। और न मुझे वैसी शक्तिकी जरूरत ही है। मेरा शरीर वैसा ही नश्वर है जैसा कि किसी कमजोरसे कमजोर मानव-बन्धुका है; और मेरे हाथसे भी वे सब गलतियां होनेकी संभावना है, जो कि उसके हाथसे हो सकती हैं। मेरी सेवाओंकी अनेक मर्यादायें हैं, परन्तु उनकी अपूर्णताओंके बावजूद भगवानने अभी तक उन पर अपना आशीर्वाद, अपनी कृपा बरसायी है।

अपनी गलतीको स्वीकार करना बड़ी अच्छी बात है। वह एक झाड़ूका काम करती है। जिस प्रकार झाड़ू तमाम गन्दगीको हटाकर जमीनको पहलेसे भी अधिक साफ कर देती है, उसी प्रकार अपनी गलतीको स्वीकार करनेसे हृदय हलका और साफ हो जाता है।

अपनी गलती स्वीकार करके मैं अपनेको अधिक बलवान अनुभव करता हूँ। इस तरह पीछे लौटनेसे हमारे कार्यकी उन्नति ही होगी। सीधी राह छोड़नेका आग्रह रखकर मनुष्य अपने उद्दिष्ट स्थानको कभी नहीं पहुंच सकता।

हिं. न. १९-२-१९२२, २१४

१२२. 'महात्मा' को तो उसके भाग्यके भरोसे ही मुझे छोड़ देना पड़ेगा। असहयोगी होते हुए भी मैं खुशीसे ऐसे किसी कानूनका समर्थन करूंगा, जिससे मुझे महात्मा कहना या मेरे पैर छूना अपराध माना जाय | जहां मैं खुद यह कानून चला सकता हूँ वहां यानी आश्रममें मुझे महात्मा कहना या मेरे पैर छूना अपराध समझा जाता है।

हिं. न. १७-३-१९२७, २४६

१२३. अब इन प्रकरणोंको समाप्त करनेका समय आ पहुंचा है।...इससे आगेका मेरा जीवन इतना अधिक सार्वजनिक हो गया है कि शायद ही कोई चीज ऐसी हो जिसे जनता जानती न हो ।...मेरा जीवन एक खुली पुस्तक रहा है। मेरे जीवनमें कुछ गुप्त नहीं है, न मैं गुप्त बातोंको प्रोत्साहन देता हूँ।

आत्म. ४३२

१२४. सत्यसे भिन्न कोई परमेश्वर है ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया। यदि इन प्रकरणोंके पन्ने-पन्नेसे यह प्रतीति न हुई हो कि सत्यमय बननेका एकमात्र मार्ग अहिंसा ही है, तो मैं ये प्रकरण लिखनेके अपने प्रयत्नको व्यर्थ समझता हूँ। प्रयत्न चाहे व्यर्थ हो, किन्तु वचन – यह महान सिद्धान्त – व्यर्थ नहीं है।

आत्म. ४३२

१२५. मनके विकारोंको जीतना सारे संसारको शस्त्रयुद्धसे जीतनेकी अपेक्षा मुझे अधिक कठिन लगता है। हिन्दुस्तान आनेके बाद भी मैं अपने भीतर छिपे हुए विकारोंको देख सका हूँ, शरमिन्दा हुआ हूँ, किन्तु हारा नहीं हूँ। सत्यके प्रयोग करते हुए मैंने आनन्द लूटा है, और आज भी लूट रहा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी मुझे विकट मार्ग तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत् बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छासे अपनेको सबके अन्तमें नहीं रखता, तब तक उसे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा नम्रताकी पराकाष्ठा है।

आत्म. ४३३

१२६. मैं अज्ञान मानव-समूहकी पूजासे सचमुच घबरा उठा हूँ। अगर लोग मुझ पर थूकते तो मुझे अपनी सच्ची स्थितिका निश्चित पता चलता। तब हिमालय जैसी महान भूलों या दूसरी भूलोंको स्वीकार करनेकी, पीछे लौटनेकी या नयी योजना बनानेकी जरूरत नहीं रह जाती।

मा. म. गां. ७

१२७. मैं कहीं भी प्रतिष्ठा पानेकी अभिलाषा नहीं रखता। प्रतिष्य राजदरबारोंकी वस्तु है। मैं तो हिन्दुओंकी तरह मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियोंका एक सेवक हूँ। और सेवकको प्रेमकी जरूरत होती है, न की प्रतिष्ठाकी। वह प्रेम मुझे तब तक निश्चित रूपसे मिलेगा, जब तक मैं जनताका वफादार सेवक बना रहूँगा।

मा. म. गां. ८

१२८. चाहे जिस तरह हो, परन्तु यूरोप या अमेरिका जानेमें मुझे एक तरहका भय लगता है। यह डर इसलिए नहीं लगता कि मैं अपने लोगोंसे इन महाद्वीपोंके लोगों पर अधिक अविश्वास रखता हूँ, बल्कि इसलिए लगता है कि मैं अपने-आप पर ही अविश्वास करता हूँ। मुझे स्वास्थ्य-सुधारके लिए या सैर-सपाटेके लिए पश्चिममें जानेकी इच्छा नहीं है। मुझे सार्वजनिक सभाओंमें भाषण करनेकी इच्छा नहीं है। लोग महात्मा या महापुरुषकी तरह मेरे साथ व्यवहार करें इससे मुझे नफरत होती है। मैं नहीं समझता कि सार्वजनिक भाषणों और सार्वजनिक प्रदर्शनोंका भयंकर श्रम उठानेकी शक्ति फिरसे कभी मेरे इस शरीरमें आयेगी। यदि परमात्मा मुझे कभी पश्चिममें ले गया, तो मैं वहांके जन-समूहके हृदयोंमें प्रवेश करनेके लिए, पश्चिमके नौजववानोंसे शान्त बातें करनेके लिए और अपने ही जैसे विचारवाले शान्तिप्रेमी पुरुषोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए वहां जाऊंगा, जो शान्तिके लिए सत्यको छोड़कर दूसरी हर तरहकी कुरबानी देनेको तैयार होंगे।

लेकिन मुझे लगता है कि मेरे पास अभी ऐसा कोई संदेश नहीं है, जो मैं स्वयं जाकर पश्चिमको सुनाऊं। मेरा विश्वास है कि मेरा संदेश सारे जगतके लिए है, मगर अब तक मुझे यही लगता है कि स्वदेशमें काम करके ही मैं अपना संदेश दुनियाको उत्तम ढंगसे सुना सकता हूँ। अगर

मैं हिन्दुस्तानमें अपने कामकी प्रत्यक्ष सफलता दिखला सका, तो मैं समझूंगा कि संदेश देनेका मेरा कार्य पूरा हो चुका। अगर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि हिन्दुस्तानको मेरे संदेशकी कोई जरूरत नहीं है, तो उसमें विश्वास रखते हुए भी मैं उसे सुनानेके लिए और कहीं नहीं जाऊंगा। इसलिए अगर मैं हिन्दुस्तानके बाहर जानेका साहस कभी करूंगा, तो इसीलिए करूंगा कि मुझमें यह श्रद्धा और विश्वास है – यद्यपि मैं उसे सबको प्रत्यक्ष नहीं दिखला सकता – कि अत्यंत धीरे-धीरे ही क्यों न हो, फिर भी हिन्दुस्तान मेरे संदेशको स्वीकार कर रहा है।

इस प्रकार जब मैं आमंत्रण देनेवाले मित्रोंसे हिचकिचाहटके साथ पत्र-व्यवहार चला रहा था, तब मैंने देखा कि मेरा यूरोप जाना और किसी कारणसे जरूरी न हो तो सिर्फ रोलांसे मिलनेके लिए ही मुझे वहां जाना चाहिये। साधारण यूरोप-यात्राके संबंधमें अपने पर अविश्वास होनेके कारण मैंने पश्चिमके इस बुद्धिमान पुरुषकी मुलाकातको ही अपनी यूरोप-यात्राका मुख्य कारण बनाना चाहा। मैंने उनके सामने अपनी मुश्किलें रखीं और अत्यंत स्पष्टतापूर्वक उनसे पूछा कि क्या आप अपनी मुलाकातको ही मेरी यूरोप-यात्राका मुख्य कारण मुझे बनाने देंगे? उत्तरमें उन्होंने बताया कि 'मैं केवल अपनी मुलाकातको ही आपकी यूरोप-यात्राका मुख्य कारण स्वयं सत्यके नाम पर भी नहीं बनाने दूंगा।' केवल हमारी मुलाकातके ही लिए वे मुझे अपने यहांके काममें रुकावट नहीं डालने देंगे। उनकी मुलाकातके सिवा मुझे और कोई आन्तरिक प्रेरणा नहीं जान पड़ती। मुझे अपने इस निश्चय पर खेद होता है, किन्तु यही निश्चय मुझे ठीक जान पड़ता है। क्योंकि यूरोप जानेकी कोई आंतरिक प्रेरणा नहीं है, लेकिन देशमें बहुत-कुछ करनेका अन्तर्नाद तो निरन्तर सुनाई पड़ता है।

हिं. न. २६-४-१९२८, २८४

१२९. मैं यह मानता हूँ कि दुनियामें किसी प्राणीसे मैं द्वेष कर ही नहीं सकता। बरसोंके प्रार्थनामय संयम और साधनाके फलस्वरूप मैंने कोई ४० सालसे किसीके प्रति द्वेष रखना छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि यह एक बहुत बड़ा दावा है। फिर भी मैं पूरी नम्रताके साथ यह दावा करता हूँ। परंतु बुराईसे, फिर वह कहीं भी हो, मैं द्वेष कर सकता हूँ और अवश्य करता हूँ। मैं उस शासन-प्रणालीसे

नफरत करता हूँ, जिसे अंग्रेजोंने भारतवर्षमें स्थापित किया है। भारतकी जो बेतहाशा लूट हो रही है उससे मैं नफरत करता हूँ, जिस तरह कि मैं तहेदिलसे अछूतपनकी घृणित प्रथासे नफरत करता हूँ - जिसके लिए करोड़ों हिन्दू स्वयं जिम्मेदार हैं। परन्तु मैं उन अंग्रेजोंसे, जो यहां बड़े बने हुए हैं, उसी प्रकार नफरत नहीं करता जिस प्रकार मैं ऊंचे बने बैठे हिन्दुओंसे नफरत नहीं रखता । मैं हर तरहके प्रेमपूर्ण साधनोंसे ही उनका सुधार करना चाहता हूँ। कुछ दिन हुए, आश्रमका एक अपंग बना हुआ बछड़ा कष्टसे छटठपटा रहा था। उसकी दवा की गई। पशु-डॉक्टरकी सलाह ली गई। उन्होंने उसके जीनेकी आशा छोड़ दी थीं। हम भी देख सकते थे कि वह कष्टसे छटपटाता था। करवट बदलवानेमें भी उसे कष्ट होता था।

हिं. न. ६-८-१९२५, ४१४

१३०. मुझे लगा कि ऐसी स्थितिमें इस बछड़ेका प्राण लेना ही धर्म है, अहिंसा है। मैंने साथियोंके साथ इसकी चर्चा की। उनमें से बहुतोंने मेरी रायका समर्थन किया। फिर सारे आश्रमके लोगोंके साथ मैंने बात की। उनमें से एक भाईने कई दलीलें देकर बछड़ेको मारनेका सख्त विरोध किया। इस भाईकी दलील यह थी कि जिसमें प्राण देनेकी शक्ति न हो, उसे प्राण लेना भी नहीं चाहिये। मुझे यह दलील इस प्रसंग पर अप्रस्तुत लगी। जहां स्वार्थकी भावनासे कोई दूसरेका प्राण-हरण करे, वहां ऐसी दलीलको स्थान हो सकता है। अन्तमें दीन भावसे किन्तु दृढ़तापूर्वक पासमें खड़े रहकर मैंने डॉक्टरके द्वारा पिचकारी दिलवा कर बछड़ेका प्राण-हरण किया। प्राण निकलनेमें दो मिनिटसे कम ही समय लगा होगा।

मैं जानता था कि यह काम आजके लोकमतको पसन्द नहीं पड़ सकता। इसमें आजका लोकमत हिंसा ही देखेगा। किन्तु धर्मका पालन करनेवाला लोकमतका विचार नहीं करता। जिसमें मैं धर्म देखूं उसमें दूसरे लोग अधर्म देखें, तो भी मुझे सूझे हुए धर्मका ही पालन करना चाहिये, ऐसा मैं सीखा हूँ और यह ठीक है ऐसा मेरे अनुभवने सिद्ध कर दिया है। वास्तवमें मेरा माना हुआ धर्म अधर्म भी हो सकता है। किन्तु कभी-कभी अनजानमें भूल किये बिना अधर्मका पता नहीं चलता है। मैं, लोकमतके वश होकर या किसी दूसरे भयके वश होकर, जिसे अपना धर्म मानूं

उसका आचरण न करूं, तो धर्माधर्मका निर्णय मैं कभी नहीं कर सकूंगा और अन्तमें मैं धर्महीन हो जाऊंगा। ऐसे ही कारणोंसे गुजराती कवि प्रीतमने गाया है:

'प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा भाळी पाछा भागे जोने।'

अर्थात् प्रेमपंथ आगकी ज्वाला है। उसे देखकर ही लोग भागते हैं। अहिंसा-धर्मका पंथ प्रेमपंथ है। इस पंथमें आदमीको बहुत बार अकेले ही चलना पढ़ता है।

मैंने इस प्रश्न पर अपने मनमें विचार किया और मित्रोंसे इसकी चर्चा की कि "जैसा मैंने बछड़ेके बारेमें किया, वैसा मैं अपने बारेमें करना चाहूंगा? मनुष्यके सम्बन्धमें क्या मैं ऐसा करनेको तैयार होऊंगा?' मुझे लगा कि दोनोंको एक ही न्याय लागू होता है। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि यहां अगर 'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे' का नियम लागू न पड़े तो बछड़ेको मारा नहीं जा सकता। ऐसे दृष्टांतोंकी कल्पना की जा सकती है जब कि मारनेमें ही अहिंसा हो और न मारनेमें हिंसा। मान लीजिये मेरी लड़की कोई राय देने लायक न हो। उस पर कोई आक्रमण करने आ जाय। मेरे पास यदि उसे जीतनेका दूसरा कोई मार्ग ही न हो, तो मैं अपनी लड़कीके प्राण ले हूं और आक्रमणकारीकी तलवारके वश हो जाऊं, इसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूँ। बीमारीसे दुःखित प्रियजनोंको हम मारते नहीं हैं, क्योंकि उनकी सेवा करनेके साधन हमारे पास होते हैं और उन्हें समझ होती है। किन्तु यदि सेवा संभव न हो, जीनेकी आशा ही न हो, वे बेसुध हों और महादुःख भोगते हों, तो उनके प्राण-हरणमें मैं लेशमात्र भी दोष नहीं देखूंगा।

जिस तरह रोगीके भलेके लिए उसके शरीरकी चीर-फाड़ करनेमें डॉक्टर हिंसा नहीं करता, बल्कि शुद्ध अहिंसा-धर्मका पालन करता है, उसी तरह रोगीको मारनेमें भी शुद्ध अहिंसाका पालन हो सकता है। यह दलील की गई है कि चीर-फाड़में रोगीके अच्छे होनेकी संभावना रहती है, जब कि प्राण-हरणमें तो रोगी मर ही जाता है। किन्तु विचार करने पर जान पड़ेगा कि दोनोंमें साध्य वस्तु एक ही है। प्राण लेकर और चीर-फाड़ करके शरीरमें रहनेवाली आत्माको दुःखमुक्त करनेकी ही सामान्य धारणा है। शरीरकी चीर-फाड़ करनेसे सुख शरीरको नहीं किन्तु आत्माको पहुंचता है। आत्मा-रहित शरीरमें सुख-दुःख भोगनेकी शक्ति ही नहीं होती।

मृत्युदंडका जो डर आजकल हमारे समाजमें दिखायी पड़ता है, वह अहिंसा-धर्मके प्रचारमें बहुत बड़ी बाधक वस्तु है। किसीको गाली देना, उसका बुरा चाहना, उसका ताड़न करना, उसे कष्ट पहुंचाना, सभी कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिए दूसरेको कष्ट पहुंचाता है, उसके नाक-कान काटता है, उसे भरपेट खानेको नहीं देता है और दूसरी तरहसे उसका अपमान करता है, वह मृत्युदंड देनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक निर्दयता दिखलाता है। जिसने अमृतसरकी गलीमें लोगोंको चौंटीके समान पेटके बल चलाया, उसने अगर उन्हें मार डाला होता तो वह कम क्रूर गिना जाता। अगर कोई यह माने कि पेटके बल चलनेवाले आज भी जिन्दा हैं, इसलिए पेटके बल चलाना मृत्युदण्डसे हलकी सजा है, तो मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होगा कि वह आदमी अहिंसाको नहीं जानता है। ऐसे अनेक प्रसंग हो सकते हैं जब कि मनुष्यके लिए मृत्युका स्वागत करना ही अधिक उचित होता है। जो इस धर्मको नहीं समझते, वे अहिंसाके मूल तत्त्वको नहीं जानते।

'हरिनो मारग छे शूरानो नहीं कायरनुं काम जोने।' अर्थात् धर्मका मार्ग शूरोंके लिए है, वहां कायरोंका काम नहीं है।

हमें ईश्वरसे रोज प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! असत्यका आचरण करके जीनेकी अपेक्षा तू मुझे मौत ही देना।'

अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य अपने दुश्मनसे यह प्रार्थना करेगा: 'हे दुश्मन! मेरा अपमान करने, मुझसे अमानुषी कर्म करानेके बदले तू मुझे मार ही डाले, तो मैं तेरा उपकार मानूंगा।'

केवल मरणसे ही आदमीको या पशुको थोड़े समयके लिए भी बचा लेनेमें अहिंसा जरूर है - यह मान्यता वहम है और इससे आज देशमें घोर हिंसा होती हुई मैं देखता हूँ।

हिं. न. ४-१०-१९२८, ५२-५३

१३१. महात्मा-पदकी अपेक्षा सत्य मुझे अनन्त गुना अधिक प्रिय है। मैं जानता हूँ कि मैं महात्मा नहीं हूँ, मैं अल्पात्मा हूँ, इसका मुझे बराबर ख़याल है, और इसी कारण महात्मा-पदने मुझे कभी भुलावेमें नहीं डाला। मुझे यह कबूल कर लेना चाहिये कि मैं प्रतिक्षण हिंसा करके ही अपना शरीर निभाता हूँ, इसी कारण शरीरके प्रति मेरा मोह क्षीण होता जाता है। प्रत्येक सांस लेनेमें मैं सूक्ष्म जंतुओंकी हिंसा करता हूँ, ऐसा जानते हुए भी सांसको मैं रोक नहीं सकता। वनस्पतिका आहार करनेमें भी मैं हिंसा करता हूँ, फिर भी मैं आहारका त्याग नहीं करता। मच्छर वगैराके कष्टसे बचनेके लिए मिट्टीका तेल वगैरा चीजें काममें लेनेसे उनका नाश होता है, ऐसा जानने पर भी इन नाशक द्रव्योंका उपयोग करना मैं नहीं छोड़ता। सांपके उपद्रवसे आश्रमवासियोंको बचानेके लिए जब मारे बिना उन्हें दूर नहीं किया जा सकता तब मैं उन्हें मारने भी देता हूँ। बैलोंसे काम लेते हुए आश्रमके आदमी उन्हें पैनी आर चुभोते हैं वह भी मैं सहन कर लेता हूँ। यों मेरी हिंसाका अन्त नहीं है। अब मुझे बन्दरोंका उपद्रव परेशानीमें डाल रहा है। बन्दरोंको मार डालनेका निश्चय मैं कभी कर सकूंगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता । ऐसे निश्चयसे मैं दूर भागता हूँ। अभी तो कई उपयोगी सूचनायें देकर मित्र लोग मेरी मदद कर रहे हैं। परन्तु आश्रमकी खेती रहे या न रहे, फिर भी मैं बन्दरोंका कभी नाश करूंगा ही नहीं - ऐसी प्रतिज्ञा लेनेकी हिम्मत आज तो मुझमें नहीं है। मेरी इस विनम्र स्वीकृतिसे मित्र लोग मेरा त्याग कर दें, तो मैं लाचार हो जाऊंगा और उस त्यागको सहन करूंगा। परन्तु अहिंसा-सम्बन्धी अपनी कमजोरी अथवा अपूर्णताको छिपाकर किसीसे मैत्री रखनेकी मुझे इच्छा नहीं है। अपने विषयमें मैं सिर्फ इतना ही दावा कर सकता हूँ कि अहिंसादि महाव्रतोंको पहचाननेके लिए तथा उनका मनसे, वचनसे तथा शरीरसे संपूर्ण पालन करनेके लिए मैं सतत प्रयत्न कर रहा हूँ। उस प्रयत्नमें मुझे कम अथवा ज्यादा सफलता भी मिली है, फिर भी उस दिशामें मुझे बड़ी लम्बी मंजिलें तय करनी बाकी है इसका मुझे भान है।

हिं. न. १-११-१९२८, ८४

१३२. मैं एक गरीब भिखारी हूँ। मेरे परिग्रहमें यह चरखे, जेलकी थालियां, बकरीके दूधका एक बरतन, छह हाथकते कच्छ और टावेल तथा मेरी प्रसिद्धि है - जिसकी बहुत कीमत नहीं हो सकती।*

मो. क. गां.-३, १४२

---

* यह बात ११ सितम्बर, १९३१ को मारसीले पर चुंगी-अधिकारीसे कही गई थी।

१३३. जब मैंने अपने-आपको राजनीतिक जीवनके भंवरोंमें खिंचा हुआ पाया, तब मैंने अपने-आपसे पूछा कि मुझे अनैतिकतासे, असत्यसे और जिसे राजनीतिक लाभ कहा जाता है उससे अछूता रहनेके लिए क्या करना जरूरी है। मैं निश्चित रूपसे इस नतीजे पर पहुंचा कि यदि मुझे उन लोगोंकी सेवा करनी है, जिनके बीच मेरा जीवन बीतनेवाला है और जिनकी कठिनाइयोंको मैं दिन-प्रतिदिन देखता हूँ, तो मुझे समूची सम्पत्ति तथा सारे परिग्रहका त्याग कर देना चाहिये।

मैं सच्चाईके साथ आपसे यह नहीं कह सकता कि ज्यों ही मैं इस निश्चय पर पहुंचा त्यों ही मैंने एकदम प्रत्येक चीजका परित्याग कर दिया। मुझे आपके सामने स्वीकार करना चाहिये कि पहले-पहल इस त्यागकी प्रगति धीमी रही। और आज जब मैं संघर्षके उन दिनोंको याद करता हूँ, तो मैं देखता हूँ कि आरंभमें यह त्याग दुःखद भी था। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे मैं यह महसूस करता गया कि कई अन्य चीजोंका भी, जिन्हें मैं तब तक अपनी मानता था, मुझे संपूर्ण त्याग करना चाहिये; और एक समय आया जब उन वस्तुओंका त्याग मेरे लिए निश्चित रूपसे हर्षका विषय हो गया। और, तब एकके बाद एक वे सारी वस्तुएं बहुत तेजीसे मुझसे छूटती गई। और आपको अपने ये अनुभव सुनाते हुए मैं कह सकता हूँ कि उनके छूटनेसे मेरे कन्धोंसे एक भारी बोझ उतर गया और मुझे लगा कि अब मैं आरामके साथ चल सकता हूँ तथा अपने बन्धुओंकी सेवाका कार्य भी बड़ी निश्चिंतता और अधिक प्रसन्नताके साथ कर सकता हूँ। फिर तो किसी भी चीजका परिग्रह मेरे लिए कष्टदायक और भाररूप बन गया।

उस हर्षके कारणकी खोज करते हुए मैंने पाया कि यदि मैं किसी भी चीजको अपनी मानकर अपने पास रखता हूँ, तो मुझे सारी दुनियासे उसकी रक्षा भी करनी पड़ेगी। मैंने यह भी देखा कि कई लोग हैं जिनके पास यह चीज नहीं है, यद्यपि वे उसे चाहते हैं; और यदि कुछ भूखे

अकालपीड़ित लोग मुझे एकांत स्थानमें पाकर मेरे पासकी उस चीजका मेरे साथ बंटवारा करके ही सन्तुष्ट न हों, बल्कि उसे मुझसे छीन लेना भी चाहें, तो मुझे पुलिसकी सहायता भी प्राप्त करनी होगी। मैंने अपने-आपसे कहा: यदि वे लोग इसे चाहते हैं और मुझसे ले लेते हैं, तो ऐसा वे किसी ईर्ष्यापूर्ण हेतुसे नहीं करेंगे; लेकिन इसलिए करेंगे कि उनकी आवश्यकता मेरी आवश्यकतासे कही अधिक है।

और तब मैंने अपने-आपसे कहा: परिग्रह मुझे अपराध मालूम होता है। मैं उसी स्थितिमें अमुक चीजोंका संग्रह कर सकता हूँ, जब मुझे ज्ञात हो जाय कि उन चीजोंको रखना चाहनेवाले दूसरे लोग भी उनका संग्रह कर सकते हैं। लेकिन हम यह जानते हैं - हममें से हरएक अपने अनुभवसे कह सकता है-कि ऐसा होना असंभव है। अतएव एक ही चीज ऐसी है जिसे सब कोई रख सकते हैं, और वह है अपरिग्रह - कोई भी चीज अपने पास न रखना। अथवा दूसरे शब्दोंमें कहें तो स्वेच्छासे किया हुआ त्याग। ...इसलिए मनमें यह पूर्ण विश्वास रखकर मुझे हमेशा ऐसी इच्छा रखनी चाहिये कि ईश्वरके चाहने पर इस शरीरको भी त्याग दिया जाय और जब तक यह मेरे पास है तब तक इसका उपयोग दुराचार, ऐश-आराम या सुखभोगके लिए नहीं, बल्कि अपनी जागृतिके हर क्षणमें सेवाके लिए ही हो। और यदि यह नियम देहके लिए सही है, तो फिर वस्त्रादि वस्तुओंके लिए जिन्हें हम काममें लाते हैं, तो यह कितना ज्यादा सही है?

और जिन्होंने स्वेच्छासे लिये हुए गरीबीके इस व्रतका यथासंभव संपूर्णताकी सीमा तक पालन किया है - आत्यंतिक संपूर्णता तक पहुंचना असंभव है, लेकिन मनुष्य अधिक-से-अधिक जिस सीमा तक जा सकता है उस सीमा तक - और जो इस आदर्श दशा तक पहुंचे हैं, वे इस बातकी गवाही देते हैं कि जब आप अपने पासकी हरएक चीजका त्याग कर देते हैं, तब दुनियाकी सारी धन-संपत्ति आपकी हो जाती है।*

मो. क. गां.-३, १५५-५७

---

* ता. २७-९-१९३१ को लन्दनके गिल्ड हॉलमें दिये गए एक भाषणसे।

१३४. मैंने अपनी युवावस्थासे ही धर्मग्रंथोंका मूल्य उनकी नैतिक शिक्षाके आधार पर आंकनेकी कला सीख ली है। उनमें वर्णित चमत्कारोंमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। ईसाके विषयमें जिन चमत्कारोंकी बातें कही गई हैं, उनके कारण मैं बाइबलके ऐसे किसी उपदेशको नहीं मान सकता, जो सार्वभौम नीतिमत्ताके अनुरूप न हो। किसी-न-किसी तरह मेरे लिए, और मैं समझता हूँ कि मेरी ही तरह लाखों लोगोंके लिए भी, धर्म-शिक्षकोंके शब्द एक जीती-जागती शक्ति रखते हैं। यह शक्ति साधारण मनुष्यों द्वारा कहे हुए वैसे ही शब्दोंमें नहीं होती।

ईसा मेरी दृष्टिमें दूसरे धर्म-शिक्षकोंके समान संसारके एक महान धर्म-शिक्षक हैं। अपने समयके लोगोंके लिए वे निश्चय ही 'एकमात्र ईश्वर-प्रसूत पुत्र' थे। परन्तु उन लोगोंका जो विश्वास था वही मेरा भी हो यह जरूरी नहीं है। मेरे जीवन पर ईसाका इसलिए कम प्रभाव नहीं है कि मैं उन्हें अनेक ईश्वर-प्रसूत पुत्रोंमें से एक मानता हूँ। 'प्रसूत' विशेषणका मेरे लिए उसके शब्दार्थ आध्यात्मिक जन्मकी अपेक्षा कहीं गहरा और संभवत: विशाल अर्थ है। अपने समयमें ईसा ईश्वरके सबसे अधिक निकट थे।

जो लोग उनकी शिक्षाओंको स्वीकार करते थे, उनके पापोंके निवारणके लिए ईसाने अपनेको निर्दोष बनाकर उनके सामने अपना उदाहरण रखा था। लेकिन ऐसे लोगोंके लिए इस उदाहरणका कोई भी मूल्य नहीं, जिन्होंने अपने जीवनको उन्नत करनेका कभी कष्ट नहीं किया। किन्तु जैसे सोनेको तपानेसे उसका मूल दोष दूर हो जाता है, उसी प्रकार इस दिशामें नये सिरेसे कोशिश की जाय तो मूल दोष भी मिट सकता है।

मैं अपने अनेक पापोंको स्पष्ट से स्पष्ट रूपमें स्वीकार कर चुका हूँ। लेकिन मैं हमेशा अपने कंधों पर उनका बोझ लादे नहीं फिरता। यदि मैं ईश्वरकी ओर जा रहा हूँ, और मुझे लगता है कि मैं उसकी ओर जा रहा हूँ, तो मैं सुरक्षित हूँ; क्योंकि मैं उसकी उपस्थितिके प्रखर प्रकाशका अनुभव करता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि आत्म-सुधारके लिए यदि मैं केवल आत्म-दमन, उपवास और प्रार्थना पर ही निर्भर रहूँ तो कोई लाभ न होगा; लेकिन अगर ये सब बातें अपने सिरजनहारकी गोदमें अपना चिंताकुल सिर रखनेकी मनुष्यकी आकांक्षाको व्यक्त करती हैं - और मुझे आशा है कि ये इसी आकांक्षाको व्यक्त करती हैं - तो इनका अपार मूल्य है।

मो. क. गां.-४, ९३

१३५. एक अंग्रेज मित्र पिछले तीस वर्षसे मुझे यह समझानेका प्रयत्न कर रहे हैं कि हिन्दू धर्ममें पापीके लिए नरक-यातनाके सिवा दूसरा कुछ नहीं है, इसलिए मुझे ईसाई धर्म स्वीकार कर लेना चाहिये। जब मैं जेलमें था तब अलग-अलग स्थानोंसे मुझे 'लाइफ ऑफ सिस्टर थेरेसा' नामक पुस्तककी तीन प्रतियां मिली थीं। भेजनेवालोंने यह आशा रखी थी कि मैं सिस्टर थेरेसाके उदाहरणका अनुसरण करूंगा और ईसाको एकमात्र ईश्वर-प्रसूत पुत्र और मेरे उद्धारकके रूपमें स्वीकार कर लूंगा। मैंने नम्र भावसे वह पुस्तक पढ़ी, लेकिन मैं सेंट थेरेसाके प्रमाणको भी स्वीकार नहीं कर सका। मुझे कहना चाहिये कि मेरा दिमाग खुला है - अगर जीवनकी इस मंजिल पर और मेरी आजकी उमरमें इस प्रश्न पर मेरे दिमागको खुला कहा जा सके। जो भी हो, मैं इसी अर्थमें अपना दिमाग खुला रखनेका दावा करता हूँ कि पॉल बननेके पहले सॉलके जीवनमें जैसी घटनायें घटीं वैसी ही यदि मेरे जीवनमें भी घटें, तो मैं ईसाई धर्म को स्वीकार करनेमें हिचकिचाऊंगा नहीं । लेकिन आज मैं प्राचीन रूढ़िग्रस्त ईसाई धर्मके ख़िलाफ़ विद्रोह करता हूँ, क्योंकि मुझे इस बातका विश्वास हो गया है कि उसने ईसाके संदेशको तोड़मरोड़ कर मनमाना रूप दे दिया है। ईसा एक एशियाई महापुरुष थे, जिनका संदेश अनेक माध्यमों द्वारा लोगों तक पहुंचाया गया था। और जब उसे एक रोमन सम्राट्का सहारा मिल गया तब वह साम्राज्यवादी धर्म बन गया, जैसा कि वह आज तक है। अलबत्ता, उसमें बहुत अच्छे लेकिन बिरले अपवाद हैं। मगर उस धर्मका सामान्य झुकाव तो मैंने जैसा बताया वैसा ही है।

मो. क. गां.-४, ९५

१३६. मेरा मानस सीमित है। मैंने बहुत साहित्य नहीं पढ़ा है। मैंने दुनियाका बहुतसा भाग नहीं देखा है। मैंने जीवनमें अमुक बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है; और उनसे बाहरकी बातोंमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है।

मो. क. गां.-६, ३५६

१३७. मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं कि मैंने जो कुछ सिद्ध किया है उसे कोई भी पुरुष या स्त्री सिद्ध कर सकती है, अगर वह मेरे जितना ही प्रयत्न करे और मेरे जितनी ही आशा और श्रद्धाका विकास अपने भीतर करे।

सिलेक्शन्स. २१६

१३८. मेरा ख़याल है कि मैं अहिंसक तरीकेसे जीने और मरनेकी कला जानता हूँ। लेकिन अभी एक पूर्ण कार्य द्वारा मुझे इसे प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाना है।

ला. फे.-२, ४७५

१३९. 'गांधीवाद' नामकी तो कोई वस्तु है ही नहीं; और न मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने किसी नये सिद्धांत या शिक्षाका आविष्कार किया है। मैंने तो जो शाश्वत सत्य है उनको अपने नित्यके जीवन पर और प्रतिदिनके प्रश्नों पर अपने ढंगसे सिर्फ घटानेका ही प्रयास किया है। अतएव मनुस्मृतिके जैसी कोई स्मृति (संहिता) मेरे छोड़ जानेका सवाल ही नहीं है। उन महान विधि-निर्माता - स्मृतिकार – के और मेरे बीच कोई तुलना हो ही नहीं सकती । जो मत मैंने कायम किये हैं और जिन निर्णयों पर मैं पहुंचा हूँ, वे भी अन्तिम नहीं हैं। हो सकता है, मैं कल ही उन्हें बदल दूं। मुझे दुनियाको कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि कालसे चले आये हैं। मैंने तो यथाशक्ति विशालसे विशाल पैमाने पर इन दोनोंके अपने जीवनमें प्रयोग भर किये हैं। ऐसा करते हुए कभी-कभी मैंने गलतियां भी की हैं और अपनी उन गलतियोंसे सीखा भी है। इस प्रकार जीवन और उसकी समस्याओंने मेरे लिए सत्य और अहिंसाके पालनमें अनेक प्रयोगोंका रूप ले लिया है। स्वभावसे मैं सत्यनिष्ठ तो था, किन्तु अहिंसक नहीं था।

एक जैन मुनिने एक बार मेरे सम्बन्धमें यह ठीक ही कहा था कि मैं अहिंसाका उतना अधिक भक्त नहीं हूँ जितना कि सत्यका हूँ। और मैंने सत्यको पहला स्थान दिया है तथा अहिंसाको दूसरा, क्योंकि उनके शब्दोंमें मैं सत्यके लिए अहिंसाकी बलि दे सकता था। वास्तवमें बात यह थी कि सत्यकी उपासना करते-करते ही मुझे अहिंसा मिली है। हमारे शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि

'न हि सत्यात्परो धर्म: ।' सत्यसे परे कोई धर्म नहीं। किन्तु उनका कहना यह भी है कि 'अहिंसा परमो धर्म:।' मेरी रायमें 'धर्म' शब्दका ऊपरके इन दो सूत्रोंमें भिन्न अर्थ है।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसमें मेरा सारा तत्त्वज्ञान, यदि मेरे विचारोंको इतना बड़ा नाम दिया जा सकता हो तो, समा जाता है। आप उसे 'गांधीवाद' न कहिये; क्योंकि उसमें 'वाद' जैसी कोई चीज नहीं है। और उसके लिए न तो किसी विस्तृत साहित्यकी आवश्यकता है और न प्रचारकी। मेरी बातके विरोधमें शास्त्रोंके प्रमाण दिये गये हैं, परन्तु मैंने अपनी इस बातको और भी अधिक दृढ़तासे पकड़ लिया है कि किसी भी वस्तुके लिए सत्यका बलिदान नहीं किया जा सकता। मैंने जिन सरल सत्योंको सामने रखा है उनमें जिनका विश्वास हो, वे उनका प्रचार जगतमें केवल तदनुसार आचरण करके ही कर सकते हैं। लोगोंने मेरे चरखेका अक्सर मजाक उड़ाया है और एक कड़े आलोचकने तो एक बार कहा था कि जब मैं मरूंगा तब ये चरखे मेरी चिता रचनेका काम देंगे। लेकिन इससे चरखे पर मेरी जो दृढ़ श्रद्धा है वह विचलित नहीं हुई। मैं पुस्तकोंके जरिये दुनियाको कैसे विश्वास दिलाऊं कि मेरे सारे रचनात्मक कार्यक्रमका मूल अहिंसामें है? मेरा जीवन ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकता है।

ह. से. २८-३-१९३६, ४१-४२

१४०. थोरोके रूपमें आपने ही मुझे एक ऐसा गुरु दे दिया, जिसके 'सविनय अवज्ञा-भंगका कर्तव्य' (ड्यूटी ऑफ सिविल डिस-ओबीडियन्स) नामक निबन्धके द्वारा मुझे अपने उस कार्यके लिए वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त हुआ था, जो मैं उन दिनों दक्षिण अफ्रीकामें कर रहा था। ग्रेट ब्रिटनने मुझे रस्किन जैसा गुरु दिया, जिसके 'अण्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) ग्रंथने मेरे विचारोंमें इतना परिवर्तन कर दिया कि मैं एक ही रातमें बिलकुल बदल गया। मैंने वकालत छोड़ी, शहरमें रहना छोड़ा, और मैं एक देहाती बनकर डरबनसे दूर एक ऐसे फार्म पर रहने लगा जो नजदीकके रेलवे स्टेशनसे भी तीन मील दूर था। और रूसने टॉल्स्टॉयके रूपमें मुझे वह गुरु दिया जिनसे मुझे अपनी अहिंसाका तर्कशुद्ध आधार प्राप्त हुआ। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके मेरे उस आन्दोलनको, जो उस वक्त शरू ही हुआ था और जिसकी अद्भुत शक्तियोंको उस समय तक मैं जान भी नहीं

पाया था, अपना आशीर्वाद दिया था। मेरे नाम लिखे अपने एक पत्रमें उन्होंने यह भविष्य-वाणी की थी कि मैं एक ऐसे आन्दोलनका नेतृत्व कर रहा हूँ, जिसके द्वारा निश्चय ही दुनियाके पददलित लोगोंको आशाका एक सन्देश प्राप्त होगा । इसलिए आप यह समझ सकेंगे कि इस समय जो काम मैंने उठाया है, उसमें ग्रेट ब्रिटेन और पश्चिमके देशोंके ख़िलाफ़ दुश्मनीका कोई भाव नहीं है। 'अण्टु दिस लास्ट' में दिये गये सर्वोदयके सन्देशको अच्छी तरह पचाने और आत्मसात् करनेके बाद मैं उस फासिज़्म या नाज़ीवादके समर्थनका दोषी नहीं बन सकता, जिसका ध्येय व्यक्तिका और उसकी स्वतंत्रताका दमन करना है।

ह. से. ९-८-१९४२, २५२

१४१. इस जीवनमें मेरी अपनी कोई गुप्त बातें नहीं हैं। मैंने अपनी कमजोरियोंका स्वीकार किया है। अगर मुझे विषयभोगकी इच्छा हुई, तो मैं हिम्मतके साथ उसे कबूल कर लूंगा। जब अपनी पत्नीके साथ संभोग करनेमें भी मुझे नफरत मालूम होने लगी और जब मैंने अपनी काफी परीक्षा कर ली, उसके बाद ही सन् १९०६ में मैंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया और लगनसे करनेके लिए ही लिया। उसी दिनसे मेरा खुला जीवन शुरू हुआ। ...और जिस दिनसे मैंने ब्रह्मचर्यका पालन शुरू किया, उसी दिनसे हम दोनों (पति-पत्नी) की स्वतंत्रता शुरू हुई। मेरी पत्नी स्वतंत्र स्त्री हो गई, उसके पति और स्वामीके नाते मेरी सत्तासे उसे मुक्ति मिल गई; और मेरी जिस काम-वासनाको उसे तृप्त करना पड़ता था उस काम-वासनाकी गुलामीसे मैं भी मुक्त हो गया। जिस अर्थमें मेरी पत्नी मेरे आकर्षणका केन्द्र थी, उस अर्थमें दूसरी स्त्री मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं रखती थी। पतिके नाते मैं अपनी पत्नीके प्रति इतना ज्यादा वफादार था और अपनी मांके सामने ली हुई प्रतिज्ञाके प्रति मैं इतना अधिक सच्चा था कि दूसरी किसी स्त्रीका गुलाम मैं बन ही नहीं सकता था। लेकिन जिस रीतिसे ब्रह्मचर्य मेरे जीवनमें आया, वह मुझे स्त्रीके प्रति मनुष्यकी माताके रूपमें आकर्षित किये बिना नहीं रही ।...मेरा ब्रह्मचर्य उसके पालनके प्राचीन नियमोंके बारेमें कुछ नहीं जानता था। अवसरके अनुसार मैंने अपने नियम खुद ही बना लिये। लेकिन मैंने ऐसा कभी नहीं माना कि ब्रह्मचर्यके समुचित पालनके लिए स्त्रीके साथ सारा सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। जो संयम स्त्रीके साथ सारा सम्बन्ध त्याग देनेकी मांग करता है - फिर भले वह सम्बन्ध कितना ही निर्दोष

क्यों न हो - वह जबरन् लादा हुआ संयम है, जिसका बहुत कम या कोई मूल्य नहीं है। इसलिए सेवाके लिए स्त्रियोंके साथ मेरे जो स्वाभाविक सम्बन्ध आये, उन्हें मैंने कभी नहीं टाला। मैंने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक यूरोपियन और हिन्दुस्तानी बहनोंका विश्वास संपादन किया। और जब मैंने दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानी बहनोंको सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल होनेका निमंत्रण दिया, तब मैं उन्हींमें से एक बन गया। मैंने देखा कि मैं स्त्रियोंकी सेवा करनेकी विशेष योग्यता रखता हूँ। इस बातको - यद्यपि यह मुझे आकर्षक लगती है - छोटी करके मैं यह कहूँगा कि हिन्दुस्तान लौटने पर मैं कुछ ही समयमें यहांकी स्त्रियोंके साथ एकरूप हो गया। उनके हृदय तक मैं जिस आसानीसे पहुंच जाता था, उसका ज्ञान मेरे लिए सुखद था। मुस्लिम बहनोंने जिस तरह दक्षिण अफ्रीकामें मुझसे कभी परदा नहीं किया, उसी तरह यहां हिन्दुस्तानमें उन्होंने मुझसे कभी परदा नहीं किया। आश्रममें मैं चारों ओर स्त्रियोंसे घिरा हुआ सोता हूँ, क्योंकि वे हर तरहसे मेरे साथ अपनेको सुरक्षित अनुभव करती हैं। यह याद रखना चाहिये कि सेगांव आश्रममें किसी तरहका एकांत नहीं है।

अगर मैं विषय-भोगकी दृष्टिसे स्त्रियोंके प्रति आकर्षित हुआ, तो इस उमरमें भी मैं बहु-विवाहकी हिमायत करनेकी हिम्मत रखता हूँ। मैं स्वतंत्र प्रेममें विश्वास नहीं करता-भले वह गुप्त हो या खुला। स्वतंत्र खुले प्रेमको मैंने कुत्तेका प्रेम माना है। गुप्त प्रेममें कायरता भी भरी रहती है।

मो. क. गां.-५, २४१-४२

१४२. "आप अपने लड़केको ही अपने साथ नहीं रख सके और वह स्वेच्छाचारी बना हुआ है, तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि आप अपने घरको ही संभालें और संतोष मानें?"

यह एक ताना माना जा सकता है। लेकिन मैं इसे ताना नहीं मानता; क्योंकि यह सवाल किसीके दिलमें उठे, उससे पहले मेरे ही दिलमें उठ चुका था। मैं पूर्वजन्म और पुनर्जन्मको मानता हूँ। हमारे सारे सम्बन्ध पूर्वजन्मोंके संस्कारोंका फल होते हैं। ईश्वरका कानून अगम्य है। वह अखंड शोधका विषय है। कोई उसका पार नहीं पा सकता।

अपने पुत्रके बारेमें मैं जो समझता हूँ, वह इस प्रकार है: मेरे घरमें कुपुत्र जन्म ले, तो उसे मैं अपने पापका ही फल मानूंगा। मेरे पहले पुत्रका जन्म केवल मेरी मूर्च्छित (मोहान्ध) दशाका

फल है। फिर, वह बड़ा भी उस जमानेमें हुआ था, जब कि मैं स्वयं बन रहा था। उस समय मैं अपने-आपको कम पहचानता था। आज भी मैं अपने-आपको पूरी तरहसे पहचाननेका दावा नहीं करता, मगर मैं मानता हूँ कि उस समयकी अपेक्षा आज मैं अपनेको अधिक पहचानता हूँ। वह पुत्र लम्बे अरसे तक मुझसे अलग रहा। उसे गढ़नेका काम पूरी तरह मेरे हाथमें नहीं था। इसलिए उसका जीवन 'अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट' जैसा हो गया। मेरे ख़िलाफ़ उसकी यह शिकायत रही है कि मैंने भूलसे जिसे परमार्थ माना है, उसमें उसकी और उसके भाइयोंकी आहुति दे दी है। इस प्रकारका आरोप दूसरे पुत्रोंने भी कम या अधिक मात्रामें, संकोच करते हुए, मुझ पर किया है। मगर उन्होंने उदार हृदयसे मुझे क्षमा कर दिया है। बड़े लड़केने तो मैंने अपने जीवनमें जो फेरफार किये उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इसलिए उसने जिन्हें मेरे अपराध माना है, उन्हें वह भूल नहीं सका। ऐसी स्थितिमें मैंने उसे खोया है। इसका कारण मैं खुद हूँ, यह समझ कर मैं शांत होकर बैठ गया हूँ। लेकिन तो भी मेरा यह वाक्य सही नहीं है, क्योंकि मेरी प्रभुसे सदा यह प्रार्थना रहती है कि वह उसे सद्बुद्धि दे और उसकी सेवा करनेमें मुझसे जो कमी रह गई हो उसके लिए मुझे क्षमा करे। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यका स्वभाव ऊर्ध्वगामी है। इसलिए मैंने बिलकुल यह आशा छोड़ नहीं दी है कि वह अपनी इस अज्ञान-निद्रासे कभी-न-कभी जरूर जागेगा। इसलिए जैसे सारा संसार मेरी अहिंसाके प्रयोगका क्षेत्र है, वैसे ही वह भी मेरी अहिंसाके प्रयोगके लिए एक क्षेत्र है। इसमें सफलता कब मिलेगी, इसकी मैं कभी चिन्ता नहीं करता। मुझे सन्तोष देनेके लिए इतना काफी है कि जो कर्तव्य मुझे सूझे, उसे पूरा करनेमें मैं शिथिल न रहूँ। "मनुष्यका अधिकार कर्तव्य पर है, फल पर नहीं" - गीताके इस वाक्यको मैं कुन्दन-रूप समझता हूँ।

ह. से. १०-८-१९४०, २१५-१६

१४३. एक भाईने मुझे अख़बारकी एक कतरन भेजी है। उसमें ख़बर छपी है कि मेरे नामका एक मंदीर बनवाया गया है और उसमें मेरी मूर्तिकी पूजा की जाती है। इसे मैं मूर्तिपूजाका बेढंगा रूप मानता हूँ। जिसने यह मंदिर बनवाया है, उसने अपने पैसे बरबाद किये हैं, गांवके भोले लोगों को गलत रास्ता दिखाया है और मेरे जीवनका गलत ख़ाका खींच कर मेरा अपमान किया है। इससे पूजाका अर्थ सिद्ध नहीं होता, उलटे अनर्थ होता है। अपने जीवन-निर्वाहके लिए या स्वराज्यके

लिए यज्ञके रूपमें कातना ही मेरे विचारमें सच्ची चरखापूजा है। तोतेकी तरह गीताका पारायण करनेके बदले उसके उपदेशके अनुसार आचरण करना सच्ची गीता-पूजा है। गीतापाठ भी उसी सीमा तक उचित माना जायेगा जिस सीमा तक वह गीताके उपदेशके अनुसार आचरण करनेमें सहायक हो। मनुष्यकी कमजोरीका अनुकरण नहीं, बल्कि उसके गुणोंका अनुकरण करना ही उसकी सच्ची पूजा है। जीवित मनुष्यकी मूर्ति बनाकर, उसकी पूजा करके हम हिन्दू धर्मको पतनकी आखिरी सीढ़ी पर पहुंचा देते हैं। मृत्युके पहले किसी मनुष्यको पूरी तरह अच्छा नहीं कहा जा सकता और मृत्युके बाद भी जिसे उस मनुष्यमें आरोपित गुणोंमें विश्वास होगा वही उसे अच्छा कहेगा। सच तो यह है कि केवल एक ईश्वर ही मनुष्यके हृदयको जानता है। इसलिए किसी जीवित या मृत मनुष्यको पूजनेके बदले जो पूर्ण है और सत्य-स्वरूप है उस ईश्वरको पूजने और उसीका भजन करनेमें सुरक्षितता है। यहां यह प्रश्न अवश्य पैदा होता है कि चित्र रखना भी पूजाका ही एक प्रकार है या नहीं? इसके विषयमें मैं पहले लिख चुका हूँ। चित्र रखनेकी प्रथा भी खर्चीली तो है, परन्तु उसे निर्दोष समझ कर मैं सहन करता आया हूँ। यदि इसके कारण मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे मूर्तिपूजाको तनिक भी बढ़ावा देता होऊं, तो उसे भी हास्यास्पद और हानिकारक समझ कर छोड़ दूंगा। मन्दिरके मालिक मेरी मूर्तिको हटाकर उस मकानमें ख़ादीका केन्द्र खोलें, तो वह सब तरहसे अच्छा होगा और अभी जो पाप वे कर रहे हैं, उससे वे बच जायेंगे। उस मकानमें गरीब लोग मजदूरीके लिए रूई धुनें और कातें। दूसरे लोग यज्ञके लिए धुनें और कातें। सब खादी पहनने लगें। यही गीताका कर्मयोग है। जीवनमें इसका आचरण करना ही गीताकी और मेरी सच्ची पूजा मानी जायगी।

ह. से. २४-३-१९४६, ५२

१४४. जिस प्रकार मेरी सफलताएं और मेरी प्रतिभा ईश्वरदत्त वरदान हैं, उसी प्रकार मेरी अपूर्णताएं और असफलताएं भी ईश्वरदत्त वरदान हैं। और मैं इन दोनोंको ईश्वरके चरणोंमें अर्पण कर देता हूँ। उसने मेरे जैसे अपूर्ण मानवको इतने महान प्रयोगके लिए क्यों चुना होगा। मुझे लगता है कि उसने जानबूझकर ऐसा किया होगा। उसे करोड़ों गरीब, मूक और अज्ञान लोगोंकी सेवा - सहायता – करनी थी। किसी संपूर्ण मानवको पाकर शायद उन्हें निराशा होती। जब लोगोंने देखा

कि उन्हींकी जैसे कमजोरियों और खामियोंवाला एक मानव अहिंसाकी दिशामें आगे बढ़ रहा है, तो उनमें भी अपनी शक्ति और क्षमताके बारेमें विश्वास पैदा हुआ। अगर कोई संपूर्ण मानव हमारे नेताके रूपमें हमारे बीच आता, तो हम उसे पहचान नहीं पाते और हमने उसे किसी गुफामें भगा दिया होता। संभव है कि मेरे बाद जो मानव आयेगा, वह मुझसे अधिक पूर्ण होगा और आप उसका सन्देश ग्रहण करनेमें समर्थ होंगे।

ला. फे.-२, ८०१

१४५. जब मैंने पहले-पहल सुना कि एक अणुबमने हिरोशिमाको भस्म कर दिया है, तब मेरे मन पर उसका जरा भी असर नहीं हुआ। इसके विपरीत, मैंने अपने-आपसे कहा, "अब यदि दुनिया अहिंसाको नहीं अपनाती, तो उसका निश्चित परिणाम होगा मानव-जातिकी आत्महत्या।"

ला. फे.- २, ८००

१४६. मैं दुनियाके अनेक बुरे कामोंका काजी नहीं बनता। मैं स्वयं अपूर्ण हूँ और मुझे दुनियाकी सहिष्णुता तथा उदारताकी जरूरत है; इसलिए जब तक मैं दुनियाको परिणामकारी बोध देनेका मौका नहीं पाता या पैदा नहीं करता, तब तक मैं दुनियाकी अपूर्णताओंको सह लेता हूँ।

मो. क. गां.-१, २८५

१४७. जब मैं कोई बुरा काम करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाऊंगा और जब मेरे विचार-जगतमें कठोरता या घमण्डकी भावना एक क्षणके लिए भी प्रवेश नहीं कर पायेगी, केवल उसी समय – उससे पहले नहीं - मेरी अहिंसा सारी दुनियाके सारे मानवोंके हृदयोंको हिलायेगी।

ला. फे.-२, ८००

१४८. अगर मनुष्य पूर्ण रूपसे अपनेको ईश्वरमें लीन कर दे, तो उसे भले और बुरेको, सफलता और असफलताको ईश्वरके हाथमें छोड़कर संतोष मानना चाहिये और किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मुझे लगता है कि मैंने यह स्थिति प्राप्त नहीं की है, और इसलिए मेरा प्रयत्न अधूरा है।

ला. फे.-२, ४५३

१४९. जीवनमें एक ऐसी स्थिति आती है जब मनुष्यके लिए अपने विचारोंकी घोषणा करनेकी जरूरत नहीं रहती, बाहरी कार्यके द्वारा उनका प्रदर्शन करनेकी तो और भी कम जरूरत रहती है। उसके विचार ही अपना काम करते हैं। विचारोंमें जब यह शक्ति आ जाती है तब उसके बारेमें यह कहा जा सकता है कि बाहरसे दिखाई देनेवाले उसके अकर्ममें ही उसका कर्म समाया हुआ है।... मैं उसी दिशामें प्रयत्न कर रहा हूँ।

ला. फे.-२, ४६३

१५०. दुनियाके अनेक देशोंसे जो सवाल मुझसे पूछा गया है, आज मैं खास तौर पर उसीका जवाब देना पसंद करूंगा। वह सवाल इस तरह है: 'आपके देशमें राजनीतिक पार्टियां अपना राजनीतिक ध्येय आगे बढ़ानेके लिए हिंसाका दिनोंदिन ज्यादा उपयोग करने लगी हैं। इसकी वजह आप बतायेंगे? ब्रिटिश हुकूमतको खतम करनेके लिए पिछले ३० सालसे अहिंसाका जो तरीका अपनाया गया, कहीं उसीका तो यह नतीजा नहीं है? क्या अब भी दुनियाके लिए आपका अहिंसाका संदेश काम आ सकता है?' मैंने यहां सवाल पूछनेवालोंकी भावनाओंका अपने शब्दोंमें सार दिया है।

इसके जवाबमें मुझे अहिंसाका नहीं, बल्कि अपना दिवालियापन कबूल करना चाहिये । इसके पहले मैंने साफ कह दिया है कि पिछले तीस बरसोंमें जिस अहिंसाका उपयोग किया गया, वह कमजोरोंकी अहिंसा थी। मेरा यह जवाब ठीक या काफी है कि नहीं, यह तो दूसरोंको बताना होगा। इसके बाद दूसरी एक बात भी स्वीकार करनी होगी। वह यह कि आजकी बदली हुई परिस्थितिमें कमजोरोंकी अहिंसा कुछ काम नहीं दे सकती। हिन्दुस्तानको बहादुरोंकी अहिंसाका अनुभव नहीं है। यदि मैं बार-बार यह कहता रहूं कि बहादुरोंकी अहिंसा दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति है, तो उससे मेरा कोई मतलब हल नहीं होता | इस सत्यका निरन्तर और विशाल पैमाने पर प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखानेकी जरूरत है। मुझमें जितनी शक्ति है उसका पूरा-पूरा उपयोग करके मैं यही कर दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ। यदि मेरी उत्तम योग्यता बहुत थोड़ी हो तो उससे क्या? कहीं मैं शेखचिल्लीके रास्ते तो नहीं जा रहा हूँ? मैं ऐसी निरर्थक खोजमें अपने पीछे चलने या अपना

साथ देनेके लिए दूसरोंसे क्यों कहूँ? ये सब सवाल पूछने लायक हैं। इन सबका मेरा जवाब बिलकुल सोधा और सरल है। मैं किसीसे अपने पीछे चलने या अपना साथ देनेके लिए नहीं कहता। हरएक स्त्री और पुरुषको अपने अन्तरकी आवाजको मानना चाहिये। अगर कोई स्त्री या पुरुष अपने अन्तरकी आवाज को न सुन सके, तो उसे अपनी योग्यताके अनुसार जितना बन सके उतना कर गुजरना चाहिये। लेकिन कोई स्त्री या पुरुष भेड़की तरह दूसरेके पीछे-पीछे न चले।

एक और सवाल भी पूछा गया है और वह अक्सर पूछा जाता है; 'यदि आपको विश्वास है कि हिन्दुस्तान गलत रास्ते जा रहा है, तो आप गलत काम करनेवालोंसे अपना सम्बन्ध क्यों रखते हैं? आप अकेले ही अपने सही रास्ते क्यों नहीं जातें? और आप यह श्रद्धा क्यों नहीं रखते कि आपकी बात सच होगी, तो आपको छोड़ देनेवाले आपके मित्र और अनुयायी आपको फिर खोज लेंगे?' यह बिलकुल उचित सवाल है। मैं इसके ख़िलाफ़ कोई दलील देनेकी कोशिश नहीं करूंगा। मैं सिर्फ यही कहूंगा कि मेरी श्रद्धा आज भी पहले जैसी ही दृढ़ है। हो सकता है कि मेरा काम करनेका तरीका गलत हो।आजकी अटपटी स्थितिमें तो पहलेकी परखी हुई और पुरानी मिसालें ही दिशा बतानेके लिए हमारे सामने हैं। लेकिन एक बातका ध्यान रखना होगा। किसीको जड़ मशीनकी तरह काम नहीं करना चाहिये। इसलिए मुझे सलाह देनेवाले सब लोगोंसे मैं यही कहूंगा कि मेरे साथ धीरजसे काम लीजिये और मेरी इस श्रद्धामें शामिल हो जाइये कि आजकी दुःखी दुनियाके उद्धारके लिए तलवारकी धार जैसे अहिंसाके दुर्गम मार्गके सिवा दूसरी कोई आशा नहीं है। हो सकता है कि इस सत्यको सिद्ध करनेमें मेरे जैसे करोड़ों आदमी असफल रहें, लेकिन यह असफलता अहिंसाके सनातन नियमकी नहीं, बल्कि इन करोड़ों लोगोंकी होगी।

ह. से. २९-६-१९४७, १७७

१५१. मेरी इच्छाके विरुद्ध देशका बंटवारा हुआ है। उससे मुझे बड़ा आघात लगा है। लेकिन जिस तरीकेसे देशका बंटवारा हुआ, उससे मुझे अधिक आघात लगा है। मैंने आजकी आगको बुझानेके प्रयत्नमें 'करेंगे या मरेंगे' की प्रतिज्ञा ली है। जिस प्रकार मैं अपने देशवासियोंसे प्रेम करता हूँ, उसी प्रकार मैं सारी मानव-जातिसे प्रेम करता हूँ, क्योंकि भगवान हर मानवके हृदयमें

बसता है और मैं मानव-जातिकी सेवाके जरिये ही जीवनका उच्चतम ध्येय - मोक्ष - सिद्ध करना चाहता हूँ। यह सच है कि हमने जिस अहिंसाका आचरण किया, वह कमजोरोंकी अहिंसा थी - यानी वह अहिंसा थी ही नहीं। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि जो अहिंसा मैंने देशवासियोंके सामने रखी, वह कायरोंकी अहिंसा नहीं थी। और, अहिंसाका शस्त्र मैंने उनके सामने इसलिए नहीं रखा कि वे कमजोर थे, निहत्थे थे या फौजी तालीम पाये हुए नहीं थे, बल्कि इसलिए रखा कि इतिहासके अपने अध्ययनने मुझे यह सिखाया है कि उदात्तसे उदात्त ध्येयके लिए उपयोगमें लायी गयी घृणा और हिंसा केवल घृणा और हिंसाको ही जन्म देती हैं और शांतिकी स्थापना करनेके बजाय उसे खतम कर देती हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों और साधु-सन्तोंकी परम्पराके फलस्वरूप हिन्दुस्तानके पास अगर ऐसी कोई विरासत हो, जिसमें वह सारे संसारको साझेदार बना सकता है, तो वह क्षमा और श्रद्धाका यह सन्देश है - जो उसकी गौरवपूर्ण सम्पत्ति है। मेरी यह श्रद्धा है कि संसारने अणुबमकी शोध करके अपने लिए जिस सर्वनाशके भयको न्योता है, उसके सामने हिन्दुस्तान भविष्यमें अपनी इसी गौरवपूर्ण विरासतको रखनेवाला है। सत्य और प्रेमका अस्त्र तो अमोघ है; लेकिन उसके पुजारी हम लोगोंमें कोई ऐसा दोष है, जिसने हमें आजके आत्मघाती संघर्षमें सिर तक डुबो दिया है। इसलिए मैं आत्मपरीक्षणका प्रयत्न कर रहा हूँ।

ला. फे.-२, २४६

१५२. मैं अपने जीवनमें अनेक अग्नि-परीक्षाओंमें से पार हुआ हूँ। लेकिन यह परीक्षा शायद सबसे कठिन सिद्ध होनेवाली है। मुझे यह प्रिय है। यह अग्नि-परीक्षा जितनी अधिक कठिन होती जाती है, उतना ही अधिक मैं ईश्वरके साथ निकट अनुसंधान अनुभव करता जाता हूँ और उतनी ही अधिक उसकी असीम कृपामें मेरी गहरी श्रद्धा बढ़ती जाती है। जब तक यह श्रद्धा मुझमें बनी रहेगी, तब तक मैं जानता हूँ कि मेरा भला ही होगा।

ला. फे.-२, २४६

१५३. अगर मैं पूर्णता प्राप्त कर चुका होता, तो मैं मानता हूँ कि मुझे अपने पड़ोसियोंके - आसपासके लोगोंके - दुःख-दर्दका वैसा अनुभव नहीं होता जैसा कि अभी मुझे होता है।

परिपूर्णताकी स्थितिमें मैं उनके दुःखोंको देखता, देखकर उन्हें अपने ध्यानमें रखता, उपाय सुझा देता और अपने असंदिग्ध सत्यके बलसे लोगों द्वारा उस पर अमल कराता। परंतु अभी तक मुझे उतना ही धुंधला दिखाई देता है जितना कांचमें से दिखाई देता है; और इसलिए मुझे धीरे-धीरे और परिश्रमपूर्ण क्रियाओं द्वारा अपनी बात मनवानी पड़ती है और फिर भी हमेशा इसमें सफलता नहीं मिलती। ऐसी हालतमें यह जानते हुए कि देशमें ऐसा दुःख फैला हुआ है जो दूर किया जा सकता है, अगर मैं भारतके इन करोड़ों पीड़ित किन्तु मूक मानव-प्राणियोंके साथ हमदर्दी न रखूं और उनके दुःखसे दुःखी न होऊं, तो मैं अपनी मनुष्यतासे गिर जाऊंगा।

यं. इं. १७-११-१९२१, ३७७

१५४. मैं संसारके सामने यह जाहिर करना चाहता हूँ – भले इसके ख़िलाफ़ कुछ भी कहा जाय और भले ही पश्चिमके अनेक लोगोंका आदर और विश्वास मैं खो दूँ - कि मुझे अपने अन्तरकी आवाजको, चाहें तो आप उसे अन्तरात्मा कह लीजिये, या चाहें तो मेरे मूल आन्तरिक स्वभाव की प्रेरणा कह लीजिये, दबाना नहीं चाहिये। मेरे भीतर ऐसा कुछ है जो मुझे अपनी वेदना प्रकट करनेकी प्रेरणा दे रहा है। मैंने निश्चित रूपसे जान लिया है कि वह क्या है। मेरे भीतरका वह तत्त्व, जो मुझे कभी धोखा नहीं देता, अब मुझसे कहता है: 'तुम्हें सारे संसारके ख़िलाफ़ खड़ा रहना होगा, भले तुम्हें अकेले ही क्यों न खड़ा रहना पड़े। दुनिया क्रोधभरी आंखोंसे तुम्हारी ओर देखे, तो भी तुम्हें उसकी परवाह न करके हिम्मतसे उसके सामने देखना होगा। तुम्हारे हृदयमें बसनेवाली उस सूक्ष्म शक्तिमें विश्वास रखो, जो कहती है - मित्रोंको, पत्नीको, सभीको छोड़ दो, लेकिन उस ध्येय पर अटल रहो, जिसके लिए तुम आज तक जिये हो और जिसके लिए तुम्हें मरना चाहिये।'

मा. म. गां. १६

१५५. जब तक मैं एक भी अन्यायको या एक भी दुःखको दीन बन कर चुपचाप देखता रहूँ, तब तक मेरी आत्मा सन्तुष्ट होनेसे इनकार करती है। लेकिन मुझे जैसे एक दुर्बल, अशक्त और दुःखी प्राणीके लिए हरएक अन्यायको दूर करना या अपनी आंखोंके सामने होनेवाले सारे अन्यायोंके दोषसे अपनेको मुक्त समझना मुमकिन नहीं है। मेरे भीतरकी आत्मा मुझे एक तरफ खोंचती है

और देह दूसरी तरफ खींचती है। इन दोनों शक्तियोंके कार्यसे मनुष्य मुक्त हो सकता है, लेकिन यह मुक्ति धीरे-धीरे और कष्टप्रद प्रयत्नों द्वारा ही प्राप्त होती है। किसी यंत्रकी तरह अपने कर्मको बन्द करके मैं उस मुक्तिको नहीं पा सकता; वह तो अनासक्त भावसे ज्ञानपूर्वक कर्म करनेसे ही प्राप्त होगी। इस युद्धको देहके निरन्तर दमनका रूप लेना चाहिये, जिससे मनुष्यकी आत्मा पूर्ण रूपसे स्वतंत्र हो जाय।

हिं. न. २०-११-१९२१, १०६

१५६. मुझे तो प्रत्येक धर्मके धर्मगुरु जो कुछ कह गये हैं उस पर, उनके वचनामृत पर विश्वास है, श्रद्धा है। इतना ही नहीं, मैं ईश्वरसे सदा प्रार्थना करता हूँ कि जो लोग मुझ पर आरोप लगाते हैं, उन पर मुझे कभी गुस्सा न आये; वे मुझे गोलियोंसे छेदनेके लिए तैयार हो जायं, तो भी मैं हंसते-हंसते भगवानका स्मरण करते हुए ही मरूं। यदि मुझे मारनेवालेको मैं अन्तिम समयमें गाली दूं या उस पर क्रोध करूं, तो मुझे आप लोग फटकारना और कहना कि वह तो दम्भी महात्मा था।

ला. फे.-२, १०१

१५७. क्या मुझमें बहादुरोंकी वह अहिंसा है? केवल मेरी मृत्यु ही इसे ब्रतायेगी। अगर कोई मेरी हत्या करे और मैं मुंहसे हत्यारेके लिए प्रार्थना करते हुए तथा ईश्वरका नाम जपते हुए और हृदय-मंदिरमें उसकी जीती-जागती उपस्थितिका भान रखते हुए मरूं, तो ही कहा जायगा कि मुझमें बहादुरोंकी अहिंसा थी।

ला. फे.-२, ३२७

१५८. मैं सारी शक्तियोंके क्षीण हो जानेसे अपंग बनकर – एक हारे हुए आदमीके रूपमें नहीं मरना चाहता। किसी हत्यारेकी गोली भले मेरे जीवनका अंत कर दे। मैं उसका स्वागत करूंगा। लेकिन सबसे ज्यादा तो मैं अन्तिम श्वास तक अपना कर्तव्य करते हुए ही मरना पसन्द करूंगा।

ला. फे.-१, ५६२

१५९. मुझे शहीद बननेकी तमन्ना नहीं है। लेकिन अगर अपने धर्मकी रक्षाका उच्चतम कर्तव्य पालन करते हुए मुझे शहादत मिल जाये, तो मैं उसका पात्र माना जाऊंगा।

मा. म. गां. ९

१६०. भूतकालमें मेरे प्राण लेनेके लिए मुझ पर अनेक बार आक्रमण किये गये हैं, परन्तु आज तक भगवानने मेरी रक्षा की है और प्राण लेनेका प्रयत्न करनेवाले अपने किये पर पछताये हैं। लेकिन अगर कोई आदमी यह मानकर मुझ पर गोली चलाये कि वह एक दुष्टका खातमा कर रहा है, तो वह सच्चे गांधीकी हत्या नहीं करेगा, बल्कि उस गांधीकी हत्या करेगा जो उसे दुष्ट दिखाई दिया था।

मा. म. गां. ९

१६१. अगर मैं लम्बी बीमारीसे - नहीं, एक छोटेसे फोड़े या फुंसीसे भी मरूँ, तो लोगोंकी नाराजी मोल लेकर भी दुनियाके सामने यह जाहिर करना तुम्हारा फर्ज होगा कि मैं सच्चा महात्मा नहीं था, जिसका मैं दावा करता था। अगर तुम ऐसा करोगे तो मेरी आत्माको शांति मिलेगी, फिर वह कहीं भी रहे। यह भी याद रखना कि अगर कोई गोलीसे मुझे मारना चाहे - जैसी कि पिछले हफ्ते बम फोड़कर किसीने कोशिश की थी - और मैं उफ् किये बिना उसकी गोलीको खुली छाती पर झेल लूं तथा ईश्वरका नाम रटते हुए देह छोडूं, तभी यह कहा जायगा कि मैंने अपना दावा सच्चा साबित कर दिखाया है।*

ला. फे.-२, ७६६

———————————

* ये उद्गार २९ जनवरी, १९४८के दिन - गोली लगने के बीस ही घंटे पहले प्रकट किये गये थे।

१६२. अगर मेरे मरनेके बाद कोई मेरे शवकी स्मशान-यात्रा निकालनेका प्रयत्न करे, तो मैं जरूर उनसे कहूंगा - अगर मेरा मृत शरीर बोल सके तो - कि इससे मुझे बचायें और मेरे मरनेकी जगह ही मुझे जला दें।

ला. फे.-२, ४१७

१६३. मेरे इस दुनियासे चले जानेके बाद कोई भी एक आदमी पूरी तरह मेरा प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। लेकिन मेरा थोड़ा-थोड़ा अंश तुम सबमें जीवित रहेगा। अगर तुममें से हर आदमी ध्येयको पहला स्थान और स्वयंको अन्तिम स्थान दे, तो मेरे जानेसे पैदा हुई रिक्तता बड़ी हद तक पूरी हो जायगी।

ला. फे.-२, ७८२

१६४. मैं फिरसे जन्म लेना नहीं चाहता। लेकिन अगर मेरा दूसरा जन्म हो, तो मैं अछूतके रूपमें पैदा होना चाहूंगा, ताकि मैं उनके दुःख-दर्दोंमें, उनकी मुसीबतोंमें और उनके अपमानोंमें हिस्सा ले सकूं और मैं अपने-आपको तथा अछूतोंको उस दयनीय स्थितिसे मुक्त करनेका प्रयत्न कर सकूं।

सिलेक्शन्स. २३८

* * * * *